चाणक्यनीतिदर्पण.

भाषाटीकासमेत.

وقف ١٩٣٩ ‏ ٢/-/١٠

تاريخ ١٥٩ ‏ ٢/-/١٠

رقم ١٩٤٥ ‏ ٢/-/١٠

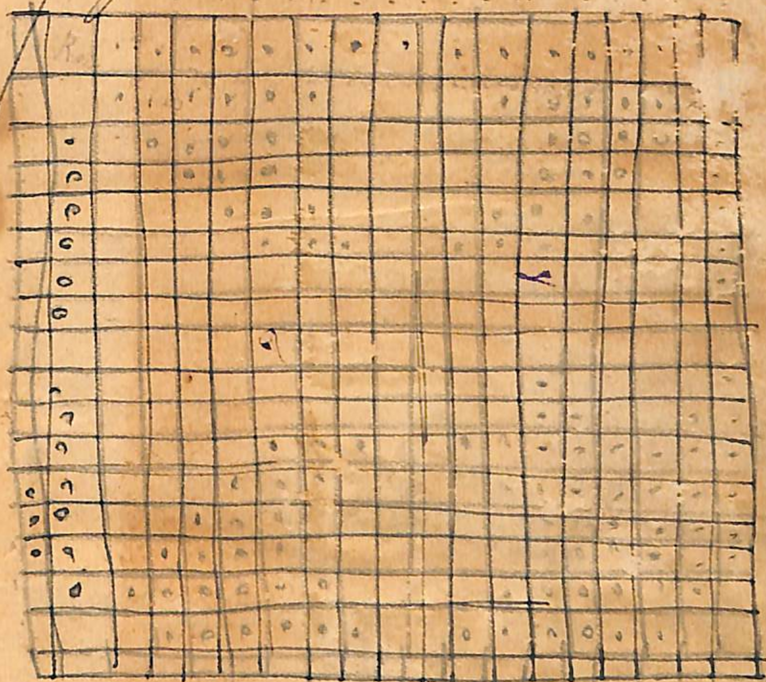
नमबसभ

pandith Hukum

S

Bathall

पण्डित हुकुंचंद जी का पुस्तक



श्रीः ।

चाणक्यनीतिदर्पणः ।

भाषापद्यभाषाटीकासमेतः ।

पण्डितमेहरचंदशर्मणासंशोधितः ।

सोऽयं

खेमराज श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

मुम्बय्यां

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालये-
ऽङ्कयित्वा प्रकाशितः ।

शके १८२६, संवत् १९६१.

श्रीगणेशाय नमः ।

चाणक्यनीतिदर्पणः ।

प्रथमोऽध्यायः १.

प्रणम्य शिरसा विष्णुं त्रैलोक्याधिपतिं प्रभुम् ॥
नानाशास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीतिसमुच्चयम् ॥ १ ॥

सो०–करि शिरसन परनाम, त्रिभुवनपति जगदीशको ।
कहिहौं नीति ललाम, शास्त्रनसे संग्रह किये ॥१॥

भा० टी०–तीनों लोकोंके पालन करनेवाले सर्वशक्तिमान् विष्णुको शिरसे प्रणाम करके अनेक शास्त्रोंमेंसे निकालकर "राजनीतिसमुच्चय" नामक ग्रंथको कहताहूं ॥ १ ॥

अधीत्येदं यथाशास्त्रं नरो जानाति सत्तमः ॥
धर्मोपदेशविख्यातं कार्याकार्यं शुभाशुभम् ॥२॥

सोरठा–यथाशास्त्र पढिबेस, मानुष या कहँ जानहि ॥
विदित धर्म उपदेश, कार्याकार्यहि शुभ अशुभ ॥ २ ॥

भा०–जो इसको विधिवत् पढकर धर्मशास्त्रमें प्रसिद्ध शुभकार्य और अशुभकार्यको जानता है वह अति उत्तम गिनाजाताहै ॥ २ ॥

तदहंसंप्रवक्ष्यामिलोकानांहितकाम्यया ॥
यस्यविज्ञानमात्रेणसर्वज्ञत्वंप्रपद्यते ॥ ३ ॥

सोरठा–कहिहौं आछे तौन, लोगनके मैं हेतुहित ॥
जानत मात्रहि जौन, प्राप्त होय सर्वज्ञता ॥ ३ ॥

भा०–मैं लोगोंके हितकी वांछासे उसको कहूंगा जिसके ज्ञानमात्र से सर्वज्ञता प्राप्त होजातीहै ॥ ३ ॥

मूर्खशिष्योपदेशेनदुष्टस्त्रीभरणेनच ॥
दुःखितैःसंप्रयोगेणपंडितोप्यवसीदति ॥ ४ ॥

दोहा-दुष्टतिया पोषण किये, मूर्ख शिष्य उपदेश ॥
औ दुखियन व्यौहारसे, विबुधहु लहैं कलेश ॥४॥

भा०-निर्बुद्धि शिष्यको पढानेसे दुष्टस्त्रीके पोषणसे और दुखियोंके साथ व्यवहार करनेसे पंडितभी दुःख पाता है ॥ ४ ॥

दुष्टाभार्या शठंमित्रंभृत्यश्चोत्तरदायकः ॥
ससर्पेचगृहेवासोमृत्युरेवनसंशयः ॥ ५ ॥

दोहा-दुष्ट भार्या मित्र शठ, उत्तरदायक दासु ॥
तासु मृत्यु संशय नहीं, सर्पवास गृह जासु ॥५॥

भा०-दुष्ट स्त्री शठ मित्र, उत्तरदेनेवाला दास और सांपवाले घरमें वास ये मृत्युस्वरूपीही हैं इसमें संशय नहीं ॥ ५ ॥

आपदर्थेधनंरक्षेद्दारान्रक्षेद्धनैरपि ॥
आत्मानंसततंरक्षेद्दारैरपिधनैरपि ॥ ६ ॥

दोहा-विपतिहेतु रक्षै धनहि, धनते रक्षै नारि ॥
रक्षै दारा धनहुते, आतम नित्य विचारि ॥ ६ ॥

भा०-आपत्ति निवारण करनेके लिये धनको बचाना चाहिये धनसेभी स्त्रीकी रक्षा करनी चाहिये सब कालमें स्त्री और धनोंसेभी अपनी रक्षा करनी उचित है ॥ ६ ॥

आपदर्थेधनंरक्षेच्छ्रीमतश्चकिमापदः ॥
कदाचिच्चलितालक्ष्मीःसंचितापिविनश्यति ॥ ७ ॥

दोहा-आपदहित धन राखिये, धनिहि आपदा कौन ॥
संचितहू नशिजातहै, जो लक्ष्मी करु गौन ॥ ७ ॥

भा०–विपत्ति निवारणकेलिये धनकी रक्षा करनी उचितहै, क्योंकि श्रीमानोंकोभी आपत्ति आती है.हां कदाचित् दैवयोग और चंचल होनेसे संचित लक्ष्मीभी नष्ट होजातीहै ॥ ७ ॥

यस्मिन्देशेनसंमानोनवृत्तिर्नचबांधवः ॥
नचविद्यागमोप्यस्तिवासंतत्रनकारयेत् ॥ ८ ॥

दोहा–नहीं वृत्ति नहिं बंधु है, नहीं मान जेहि देश ॥
विद्याहू आगम नहीं, तहाँ वास नहिं बेस ॥ ८ ॥

भा०–जिस देशमें न आदर, न जीविका न बन्धु, न विद्याका लाभ है वहां वास नहीं करना चाहिये ॥ ८ ॥

धनिकःश्रोत्रियोराजानदीवैद्यस्तुपंचमः ॥
पंचत्रयनविद्यंतेनतत्रदिवसंवसेत् ॥ ९ ॥

दोहा–भूप नदी वेदज्ञ धनि, पचयें वैद गनाय ॥
ये पांचों जहँ नहिं तहाँ, वसिय न दिवसहुँजाय ॥९॥

भा०–धनिक, वेदका ज्ञाता ब्राह्मण, राजा, नदी और पांचवां वैद्य ये पांच जहां विद्यमान नहीं हैं तहां एकदिनभी वास नहीं करना चाहिये ॥ ९ ॥

लोकयात्राभयंलज्जादाक्षिण्यंत्यागशीलता ॥
पंचयत्रनविद्यंतेनकुर्यात्तत्रसंगतिम् ॥ १० ॥

दोहा–भली जीविका लाज भय, और दक्षता दान ॥
ये पांचोंजहँ नहिं तहाँ, करै न संगसुजान ॥ १० ॥

भा०–जीविका, भय, लज्जा, कुशलता, देनेकी प्रकृति, जहां ये पांच नहीं वहांके लोगोंके साथ संगति न करनी चाहिये ॥ १० ॥

जानीयात्प्रेषणेभृत्यान्बान्धवान्व्यसनागमे ॥
मित्रंचापत्तिकालेतुभार्यांचविभवक्षये ॥ ११ ॥

दोहा-परिखिय सेवक पठै कारि, बंधु व्यसनको पाय ॥
विपति परे पर मित्रकहँ, तिय जब विभवनशाय ॥ ११ ॥

भा०-काममें लगानेपर सेवकोंकी, दुःख आनेपर बान्धोंकी, विपत्ति कालमें मित्रकी और विभवके नाश होनेपर स्त्रीकी परीक्षा होजाती है ११

आतुरेव्यसनेप्राप्तेदुर्भिक्षेशत्रुसंकटे ॥
राजद्वारेश्मशानेचयस्तिष्ठतिसबांधवः ॥ १२ ॥

दोहा-आतुरता दुखहू परे, शत्रु संकटौ पाय ॥
राजद्वार मसानमें, साथ रहै सो भाय ॥ १२ ॥

भा०-आतुर होनेपर, दुःख प्राप्त होनेपर, कालपड़नेपर, वैरियोंसे संकट आनेपर, राजाके समीप और श्मशानपर जो साथ रहताहै वही बन्धु है ॥ १२ ॥

योध्रुवाणिपरित्यज्यअध्रुवंपरिसेवते ॥
ध्रुवाणितस्यनश्यन्तिअध्रुवंनष्टमेवहि ॥ १३ ॥

दोहा-जो ध्रुव वस्तुन त्यागिकै, रहे अध्रुवहि सेइ ॥
ध्रुवहु तासु नशि जातहै, अनध्रुव रह्यो नसेइ ॥ १३ ॥

भा०-जो निश्चित वस्तुवोंको त्यागकर अनिश्चितकी सेवाकरताहै उसके निश्चित वस्तुवोंका नाश होजाताहै अनिश्चित तो नष्टही है ॥ १३ ॥

वरयेत्कुलजांप्राज्ञोविरूपामपिकन्यकाम् ॥
रूपशीलांननीचस्यविवाहःसदृशेकुले ॥ १४ ॥

दोहा-कन्या वरै कुलीनकी, यदपि रूपकी हान ॥
रूपशील नहिं नीचकी, कीजै व्याह समान ॥ १४ ॥

भा०-बुद्धिमान् उत्तम कुलकी कन्या कुरूपाभीहो उसे वरे, नीचकुलकी सुन्दरी हो तो भी उसको नहीं. इसकारण कि, विवाह तुल्यकुलमें विहित है ॥ १४ ॥

नखिनांचनदीनांचशृंगिणांशस्त्रपाणिनाम् ॥
विश्वासोनैवकर्तव्यः स्त्रीषुराजकुलेषुच ॥ १५ ॥

दोहा-सींग और नहके पशुन, शस्त्र लिये जो होय।
नदी राजकुल अरु तियन,मत विसवासो कोय ॥१५॥

भा०-नदियोंका, शस्त्रधारियोंका, नखवाले और सींगवाले जीवोंका, स्त्रियोंमें और राजकुलपर विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ १५ ॥

विषादप्यमृतंग्राह्यममेध्यादपिकांचनम् ॥
नीचादप्युत्तमांविद्यांस्त्रीरत्नंदुष्कुलादपि ॥ १६ ॥

दोहा-अमिय लीजिये विषहुसे, अशुचिहुमेंते सोन।
नीचहुते विद्या भली, दुष्ट कुलहु तिय लोन॥१६॥

भा०-विषमेंसेभी अमृतको, अशुद्ध पदार्थोंमेंसेभी सोनेको,नीचसेभी उत्तम विद्याको और दुष्ट कुलसेभी स्त्रीरत्नको लेना योग्यहै ॥ १६ ॥

स्त्रीणांद्विगुणआहारोलज्जाचापिचतुर्गुणा ॥
साहसंषड्गुणंचैवकामश्चाष्टगुणः स्मृतः ॥ १७ ॥

दोहा-नारिन भोजनदोगुना, लज्जा चौगुन होइ।
छहगुन साहसहोतहै, काम अठगुनागोइ ॥ १७ ॥

भा०-पुरुषसे स्त्रियोंका आहार दूना, लज्जा चौगुणी, साहस छगुना और काम अठगुना अधिक होता है ॥ १७ ॥

इति प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

अनृतंसाहसंमायामूर्खत्वमतिलोभिता ॥
अशौचत्वंनिर्दयत्वंस्त्रीणांदोषाःस्वभावजाः ॥ १ ॥

दोहा-तिरियन होत स्वभावसे, माया साहस झूँठ ।
निर्दय अशुचि कँजूसपन, और गुणनमें झूँठ ॥ १ ॥

भा०-असत्य विनाविचार किसी काममें झटपट लगजाना, छल, मूर्खता, लोभ, अपवित्रता और निर्दयता ये स्त्रियोंके स्वाभाविक दोष हैं ॥ १ ॥

भोज्यंभोजनशक्तिश्चरतिशक्तिर्वरांगना ॥
विभवोदानशक्तिश्चनाल्पस्यतपसः फलम् ॥ २ ॥

दोहा-भोज्यवस्तु भोजनसकति, सुंदरि सुरति उमंग ।
विभव दानसामरथिहू, मिलै बडे तपसंग ॥ २ ॥

भा०-भोजनके योग्य पदार्थ और भोजनकी शक्ति, सुन्दर स्त्री और रतिकी शक्ति, ऐश्वर्य और दानशक्ति इनका होना थोडे तपका फल नहीं है ॥ २ ॥

यस्यपुत्रोवशीभूतोभार्याछंदानुगामिनी ॥
विभवेयश्चसंतुष्टस्तस्यस्वर्गइहैवहि ॥ ३ ॥

दोहा-नारी इच्छागामिनी, पुत्र होय बस जाहि ।
विभव पाइ संतोष जेहि, इहै स्वर्ग हैं ताहि ॥ ३॥

भा०-जिसका पुत्र वशमेंरहताहै और स्त्री इच्छाके अनुसार चलती है और जो विभवमें संतोष रखता है उसको स्वर्ग यहांही है ॥ ३ ॥

तेपुत्रायेपितुर्भक्ताः सपितायस्तुपोषकः ॥
तन्मित्रंयत्रविश्वासःसाभार्यायत्रनिर्वृतिः ॥ ४ ॥

दोहा-सो सुत जो पितु भक्त है, जो पालै पितु सोय ।
मित्र सोइ विश्वास जहँ, तिय सोइ जहँ सुख होय ॥ ४॥

भा०-वही पुत्रहै, जो पिताका भक्तहै. वही पिता है, जो पालन करता है. वही मित्र है, जिसपर विश्वासहै. वही स्त्री है, जिससे सुख प्राप्त होता है ॥ ४॥

परोक्षेकार्यहंतारंप्रत्यक्षेप्रियवादिनम् ॥
वर्जयेत्तादृशंमित्रंविषकुंभंपयोमुखम् ॥ ५ ॥

दोहा–पाछे काम नसावही, मुखपर मीठे बैन ।
वरजै ऐसे मित्रको, पयमुख घट विष ऐन ॥ ५ ॥

भा०–आँखके ओट होनेपर काम बिगाडे, सन्मुख होनेपर मीठी मीठी बात बनाकर कहे ऐसे मित्रको मुहुडेंपर दूधसे और सब विषसे भरे घडेके समान छोडदेना चाहिये ॥ ५ ॥

नविश्वसेत्कुमित्रेचमित्रेचापिनविश्वसेत् ॥
कदाचित्कुपितंमित्रंसर्वंगुह्यंप्रकाशयेत् ॥ ६ ॥

दोहा–विश्वासौ नहिं मित्रको, त्यों कुमित्रहू पास ।
रूष्यो मित्र कदापि तो, करु सब मर्मप्रकास ॥ ६ ॥

भा०–कुमित्रपर विश्वास तो किसी प्रकारसे नहीं करना चाहिये और सुमित्रपरभी विश्वास न रक्खे. इसका कारण यह कि, कदाचित् मित्र रुष्ट होय तो सब गुप्त बातोंको प्रसिद्ध कर दे ॥ ६ ॥

मनसाचिंतितंकार्यंवाचानैवप्रकाशयेत् ॥
मंत्रेणरक्षयेद्गूढंकार्यंचापिनियोजयेत् ॥ ७ ॥

दोहा–मनके सोचे कामको, नाहिन करै प्रकास ।
मंत्र सरिस रक्षा करै, काम बनावै खास ॥ ७ ॥

भा०–मनसे सोचे हुये कामका प्रकाश वचनसे न करे, किंतु मंत्रसे उसकी रक्षा करै और गुप्तही उस कार्यको काममेंभी लावे ॥ ७ ॥

कष्टंचखलुमूर्खत्वंकष्टंचखलुयौवनम् ॥
कष्टात्कष्टतरंचैवपरगेहनिवासनम् ॥ ८ ॥

दोहा–मूरखता अरु तरुणता, हैं दोऊ दुख दाय ।
परघर वसिबो कष्ट अति, नीति कहत अस गाय ॥ ८ ॥

भा०-मूर्खता दुःख देती है, और युवापनभी दुःख देताहै, परंतु दूसरेके गृहका वास तो बहुतही दुःखदायक होताहै ॥ ८ ॥

शैलेशैलेनमाणिक्यंमौक्तिकंनगजेगजे ॥
साधवोनहिसर्वत्रचंदनंनवनेवने ॥ ९ ॥

दोहा-शैल शैल माणिक नहीं, गज गज मुक्ता नाहिं।
वन वनमें चन्दन नहीं, साधु न सब थल माहिं ॥ ९ ॥

भा०-सब पर्वतोंपर माणिक्य नहीं होता, और मोती सब हाथियोंमें नहीं मिलती, साधुलोग सब स्थानोंमें नहीं मिलते और सब वनमें चंदन नहीं होता ॥ ९ ॥

पुत्राश्चविविधैःशीलैर्नियोज्याःसततंबुधैः ॥
नीतिज्ञाःशीलसंपन्नाभवंतिकुलपूजिताः ॥ १० ॥

दोहा-पुत्रहि शिखवै शीलको, बुधजन नानारीति।
कुलमें पूजित होत है, शील सहितजो नीति॥१०॥

भा०-बुद्धिमान् लोग लडकोंको नाना भाँतिकी सुशीलतामें लगावें इसकारण कि, नीतिके जाननेवाले यदि शीलवान् होयँ तो कुलमें पूजित होते हैं ॥ १० ॥

मातारिपुःपिताशत्रुर्बालोयाभ्यांनपाठ्यते ॥
सभामध्येनशोभतहंसमध्येबकोयथा ॥ ११ ॥

दोहा-ते माता पितु शत्रुसम, सुत न पढावैं जौन।
राजहंसमाधि बकसरिस, सभा न शोभत तौन ॥ ११ ॥

भा०-वह माता शत्रु और पिता वैरी हैं, जिसने अपने बालक न पढाया इस कारण कि, सभाके बीच वे ऐसे नहीं शोभते जैसे हंसोंके बीच बगुला ॥ ११ ॥

लालनाद्बहवोदोषास्ताडनाद्बहवोगुणाः ॥
तस्मात्पुत्रंचशिष्यंचताडयेन्नतुलालयेत् ॥ १२ ॥

दोहा-प्यार किये बहु दोष हैं, दंड किये बहु सार ।
पुत्र शिष्यहूको करै, ताते दंड विचार ॥ १२ ॥

भा०-दुलारनेसे बहुत दोष होते हैं और दंड देनेसे बहुत गुण, इस हेतु पुत्र और शिष्यको दण्डदेना उचित है लालन नहीं ॥१२॥

श्लोकेनवातदर्द्धेनतदर्द्धार्द्धाक्षरेणवा ॥
अवंध्यंदिवसंकुर्यादानाध्ययनकर्मभिः ॥ १३ ॥

दोहा-श्लोक एक वा आधा वा, तासु आध तेहि आध ।
दिन स्वारथ करि अक्षरै, पठन दान कृत साथ॥१३॥

भा०-श्लोक वा श्लोकके आधको अथवा आधमेंसे आधको प्रतिदिन पढना उचित है. इस कारण कि, दान, अध्ययन आदि कर्मसे दिनको सार्थक करना चाहिये ॥ १३ ॥

कांतावियोगःस्वजनापमानोरणस्यशेषःकुनृपस्यसेवा ॥ दरिद्रभावोविषमासभाचविनाग्निमेतेप्रदहन्तिकायम् ॥ १४ ॥

दोहा-युद्धशेष प्यारी विरह, दरिद बन्धुअपमान ।
दुष्टराज खलकी सभा, दाहत विनहि कृशान॥१४॥

भा०-स्त्रीका विरह, अपने जनोंसे अनादर, युद्धकरके बचा शत्रु बिना आगही शरीरको जलाते हैं ॥ १४ ॥

नदीतीरेचयेवृक्षाःपरगेहेषुकामिनी ॥
मंत्रिहीनाश्चराजानःशीघ्रंनश्यंत्यसंशयम् ॥ १५ ॥

दोहा-नदीतीरको वृक्ष औ, राजा मंत्रीहीन ।
नष्ट होंय परघर तिया, अवशि शीघ्रही तीन ॥१५॥

भा०-नदीके तीरके वृक्ष, दूसरेके गृहमें जानेवाली स्त्री, मंत्रीरहित राजा, निश्चय है कि, शीघ्रही नष्ट होजाते हैं ॥ १५ ॥

बलंविद्याचविप्राणांराज्ञांसैन्यंबलंतथा ॥
बलंवित्तंचवैश्यानांशूद्राणांचकनिष्ठिका ॥ १६ ॥

दोहा–विद्या बल है विप्रको, राजाको बल सेन ।
धन वैश्यनबल शूद्रको, सेवाही बल ऐन ॥ १६ ॥

भा०–ब्राह्मणोंका बल विद्या है, वैसेही राजाका बल सेना, वैश्योंका बल धन और शूद्रोंका बल सेवा ॥ १६ ॥

निर्धनंपुरुषंवेश्याप्रजाभग्नंनृपंत्यजेत् ॥
खगावीतफलंवृक्षंभुक्त्वाअभ्यागतागृहम् ॥ १७ ॥

दोहा–करि भोजन गृह अतिथिजन, प्रजा निबल नृपजानि
फलविहीन तरु खग तजहिं, वेश्या धनबिनु मानि ॥ १७ ॥

भा०–वेश्या निर्धन पुरुषको, प्रजा शक्तिहीन राजाको, पक्षी फलरहित वृक्षको और अभ्यागत भोजन करके घरको छोड देतेहैं ॥ १७ ॥

गृहीत्वादक्षिणांविप्रास्त्यजन्तियजमानकम् ॥
प्राप्तविद्यागुरुंशिष्यादग्धारण्यंमृगास्तथा ॥ १८ ॥

दोहा–यजमानहिं दुज दान लहि, गुरु शिख विद्या पाय ।
जरे वनहुको मृग तजहिं, नीति कहत अस गाय ॥ १८ ॥

भा०–ब्राह्मण दक्षिणा लेकर यजमानको त्याग देते हैं, शिष्य विद्या प्राप्त होनेपर गुरुको, वैसेही जरेहुये वनको मृग छोड देतेहैं ॥ १८ ॥

दुराचारीदुष्टदृष्टिर्दुरावासीचदुर्जनः ॥
यन्मैत्रीक्रियतेपुंसांसतुशीघ्रंविनश्यति ॥ १९ ॥

दोहा–दुराचारि दुरदृष्टि हूं, दुर्जन दुस्थल वास ।
उनते जो संगति करै, तासु वेगहीं नाश ॥ १९ ॥

भा०–जिसका आचरण बुराहै, जिसकी दृष्टि पापमें रहती है, बुरेस्थानमें वसनेवाला और दुर्जन इन पुरुषोंकी मैत्री जिसके साथ कीजाती है वह नर शीघ्रही नष्ट होजाता है ॥ १९ ॥

समानेशोभतेप्रीतीराज्ञिसेवाचशोभते ॥
वाणिज्यंव्यवहारेषुस्त्रीदिव्याशोभतेगृहे ॥ २० ॥

दोहा-नृपमें सेवा सोहति, सोहति प्रीति समान ।
बनिआई व्यवहारमें, गृहमें तिय गुणखान ॥२०॥

भा०-समानजनमें प्रीति शोभती है और सेवा राजाकी शोभतीहै व्यवहारोंमें बनिआई और घरमें दिव्य सुंदरस्त्री शोभती है ॥ २० ॥

इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

कस्यदोषःकुलेनास्तिव्याधिनाकेनपीडिताः ॥
व्यसनंकेननप्राप्तंकस्यसौख्यंनिरन्तरम् ॥ १ ॥

दोहा-केहिके कुलमें दोष नहिं, व्याधि न पीडित कौन।
दुख पायो नहिं कौन वह, नित सुख काके भौन॥१॥

भा०-किसके कुलम दोष नहीं है? व्याधिने किसे पीडित न किया? किसको दुःख न मिला? किसको सदा सुखही रहा?॥ १ ॥

आचारः कुलमाख्यातिदेशमाख्यातिभाषणम् ॥
संभ्रमःस्नेहमाख्यातिवपुराख्यातिभोजनम् ॥ २ ॥

दोहा-आचारकुल कहँ कहत, बोल कहत है देश ।
संभ्रम प्रीतिहि कहत है, तन भोजनहि हमेश॥२॥

भा०-आचार कुलको बतलाताहै, बोली देशको जनाता है, आदर प्रीतिका प्रकाश करता है, शरीर भोजनको जानताहै ॥ २ ॥

सत्कुलेयोजयेत्कन्यांपुत्रंविद्यासुयोजयेत् ॥
व्यसनेयोजयेच्छत्रुमिष्टंधर्मेणयोजयेत् ॥ ३ ॥

दोहा-कन्या सतकुल व्याहिये, विद्या सुतहि पढाइ ।
शत्रुहि पीडे मित्र कहँ, धर्महिंदेइ लगाइ ॥ ३ ॥

भा०-कन्याको श्रेष्ठ कुलवालेको देना चाहिये, पुत्रको विद्यामें लगाना चाहिये, शत्रुको दुःख पहुँचाना उचित है और मित्रको धर्मका उपदेश करना चाहिये ॥ ३ ॥

दुर्जनस्यचसर्पस्यवरंसर्पोनदुर्जनः ॥
सर्पोदशतिकालेतुदुर्जनस्तुपदेपदे ॥ ४ ॥

दोहा-खलहु सर्प इन दुहुनमें, भला सर्प खल नाहिं ।
सर्प डसत है कालमें, खलजन पदपदमाहिं ॥ ४ ॥

भा०-दुर्जन और सर्प इनमें साँप अच्छा, दुर्जन नहीं. इसकारण कि, सांप काल आनेपर काटता है खल तो पदपदमें ॥ ४ ॥

एतदर्थंकुलीनानांनृपाःकुर्वंतिसंग्रहम् ॥
आदिमध्यावसानेषुनत्यजन्तिचतेनृपम् ॥ ५ ॥

दोहा-भूप कुलीनन्हको करै, संग्रह याही हेत ।
आदि मध्य औ अंतमें, नृपहि न ते तजि देत॥५॥

भा०-राजालोग कुलीनोंका संग्रह इस निमित्त करते हैं कि, वे आदि अर्थात् उन्नत्ति, मध्य अर्थात् साधारण और अंत अर्थात् विपत्तिमें राजाको नहीं छोडते ॥ ५ ॥

प्रलयेभिन्नमर्यादाभवन्तिकिलसागराः ॥
सागराभेदमिच्छन्तिप्रलयेपिनसाधवः ॥ ६ ॥

दोहा-मर्यादा सागर तजैं, प्रलय होनके काल ।
उत साधू छोडै नहीं, सदा आपनी चाल ॥ ६ ॥

भा०-समुद्र प्रलयके समयमें अपनी मर्यादाको छोड देते हैं और सागर भेदकी इच्छाभी रखते हैं, परन्तु साधुलोग प्रलय होनेपरभी अपनी मर्यादाको नहीं छोडते ॥ ६ ॥

मूर्खस्तुपरिहर्तव्यःप्रत्यक्षोद्विपदःपशुः ॥
भिनत्तिवाक्यशल्येनअदृशंकंटकोयथा ॥ ७ ॥

दोहा–मूरखको तजिदीजिये, प्रगट द्विपद पशुजान ॥
वचनशल्यते वेधहीं, अंधहिं कांट समान ॥ ७ ॥

भा०–मूर्खको दूर करना उचित है. इसकारण कि, देखनेमें वह मनुष्य है, परन्तु यथार्थ देखै तो दो पांवका पशु है और वाक्यरूप शल्यसे वेधता है जैसे अन्धेको कांटा ॥ ७ ॥

रूपयौवनसम्पन्नाविशालकुलसम्भवाः ॥
विद्याहीनानशोभन्तेनिर्गंधाइवकिंशुकाः ॥ ८ ॥

सोरठा–विद्या बिन कुलमान, यदपि रूपयौवनसहित ।
सुमन पलास समान, सोह न सौरभके बिना ॥ ८ ॥

भा०–सुंदरता, तरुणता और बडेकुलमें जन्म इनके रहतेभी विद्याहीन पुरुष विनागन्ध पलास (ढाक) के फूलके समान नहीं शोभते ॥ ८ ॥

कोकिलानांस्वरोरूपंस्त्रीणांरूपंपतिव्रतम् ॥
विद्यारूपंकुरूपाणांक्षमारूपंतपस्विनाम् ॥ ९ ॥

दोहा–रूप कोकिलन स्वर तियन, पतिव्रत रूप अनूप ।
विद्यारूप कुरूपको, क्षमा तपस्विन रूप ॥ ९ ॥

भा०–कोकिलोंकी शोभा स्वर है, स्त्रियोंकी शोभा पातिव्रत्य, कुरूपोंकी शोभा विद्या है, तपस्वियोंकी शोभा क्षमा है ॥ ९ ॥

त्यजेदेकंकुलस्यार्थेग्रामस्यार्थेकुलंत्यजेत् ॥
ग्रामंजनपदस्यार्थेआत्मार्थेपृथिवींत्यजेत् ॥ १० ॥

दोहा–एक त्यजै कुलअर्थ लगि, ग्राम कुलहुके अर्थ ।
तजै ग्राम देशार्थ लगि, देसौ आतमअर्थ ॥ १० ॥

भा०–कुलके निमित्त एकको छोडदेना चाहिये, ग्रामके हेतु

कुलका त्याग उचित है, देशके अर्थ ग्रामका और अपने अर्थ पृथिवीका अर्थात् सबका त्यागही उचित है ॥ १० ॥

उद्योगेनास्तिदारिद्र्यंजपतोनास्तिपातकम् ॥
मौनेचकलहोनास्तिनास्तिजागरितेभयम् ॥ ११ ॥

दोहा–नहि दारिद उद्योगपर, जपते पातक नाहिं ।
कलह रहै नहिं मौनमें, नाहिं भयजागत माहिं ॥ ११ ॥

भा०–उपाय करनेपर दरिद्रता नहीं रहती, जपनेवालेको पाप नहीं रहता, मौन होनेसे कलह नहीं होता और जागनेवालेके निकट भय नहीं आता ॥ ११ ॥

अतिरूपेणवैसीताअतिगर्वेणरावणः ॥
अतिदानाद्बलिर्बद्धोह्यतिसर्वत्रवर्जयेत् ॥ १२ ॥

दोहा–अतिछबि सीताहरण भौ, नशि रावण अति गर्व ।
अतिहि दानते बलि बँधे, अति तजिये थल सर्व ॥ १२ ॥

भा०–अतिसुंदरताके कारण सीता हरी गई, अतिगर्वसे रावण मारा गया, बहुत दान देकर बलिको बँधना पडा; इस हेतु अतिको सब स्थलमें छोड देना चाहिये ॥ १२ ॥

कोहिभारःसमर्थानांकिंदूरंव्यवसायिनाम् ॥
कोविदेशःसुविद्यानांकोप्रियःप्रियवादिनाम् ॥ १३ ॥

दोहा–उद्योगिन कछु दूर नहिं, बलिहि न भार विशेश ।
प्रियवादिन अप्रिय नहिं, बुधहि न कठिन विदेश ॥ १३ ॥

भा०–समर्थको कौन वस्तु भारी है काममे तत्पर रहनेवालेको क्या दूर है, सुन्दर विद्यावालोंको कौन विदेश है, प्रियवादियोंको अप्रिय कौन है ॥ १३ ॥

एकेनापिसुवृक्षेणपुष्पितेनसुगन्धिना ॥
वासितंतद्वनंसर्वंसुपुत्रेणकुलं यथा ॥ १४ ॥

दोहा–एक सुगंधित वृक्षसे, सब वन होत सुवास ।
जैसे कुल शोभित अहै, सहि सुपुत्र गुणरास॥१४॥

भा०–एकभी अच्छे वृक्षसे जिसमें सुन्दर फूल और गन्ध है उससे सब वन सुवासित होजाता है जैसे सुपुत्रसे कुल ॥ १४ ॥

एकेनशुष्कवृक्षेणदह्यमानेनवह्निना ॥
दह्यतेतद्वनंसर्वंकुपुत्रेणकुलं यथा ॥ १५ ॥

दोहा–सूख जरत इक तरहुते, जस लागत वन डाढ ।
कुलको दाहक होत है, तस कुपूतकी बाढ॥ १५॥

भा०–आगसे जरतेहुये एकही सूखे वृक्षसे वह सब वन ऐसे जरजाता है जैसे कुपुत्रसे कुल ॥ १५ ॥

एकेनापिसुपुत्रेणविद्यायुक्तेनसाधुना ॥
आह्लादितंकुलंसर्वंयथाचंद्रेणशर्वरी ॥ १६ ॥

सोरठा–एकहु सुत जो होय, विद्यायुत औ साधुचित ।
आनंदित कुल सोय,यथा चन्द्रमासे निशा॥१६॥

भा०–विद्यायुक्त भला एकभी सुपुत्रसे सब कुल ऐसे आनंदित हो जाता है जैसे चंद्रमासे रात्रि ॥ १६ ॥

किंजातैर्बहुभिः पुत्रैः शोकसंतापकारकैः ॥
वरमेकःकुलालंबीयत्रविश्राम्यते कुलम् ॥ १७ ॥

दोहा–करनहारसंताप सुत, जनमें कहा अनेक ।
देइ कुलहि विश्राम जो, श्रेष्ठ होय बरु एक॥१७॥

भा०–शोक संताप करनेवाले उत्पन्न बहुपुत्रोंसे क्या, कुलको सहारा देनेवाला एकही पुत्र श्रेष्ठहै जिसमें कुल विश्राम पाता ॥१७॥

लालयेत्पंचवर्षाणिदशवर्षाणिताडयेत् ॥
प्राप्तेतुषोडशेवर्षेपुत्रे मित्रत्वमाचरेत् ॥ १८ ॥

दोहा-पंचवर्षलौं लालिये, दशलौं ताडन देइ ॥
सुतहिं सोलहे वर्षमें, मित्र सरिस गनिलेइ ॥ १८ ॥

भा०-पुत्रको पांच वर्षतक दुलारे, उपरांत दश वर्षपर्यंत ताडन करे. सोलहवें वर्षकी प्राप्ति होनेपर पुत्रमें मित्रसमान आचरण करे ॥ १८ ॥

उपसर्गेऽन्यचक्रेचदुर्भिक्षेचभयावहे ॥
असाधुजनसंपर्केयः पलायतिजीवति ॥ १९ ॥

दोहा-काल उपद्रव संग शठ, अप्य राज भय होय ॥
तेहि थलते जो भागि है, जीवत बचि है सोय ॥१९॥

भा०-उपद्रव उठनेपर, शत्रुके आक्रमण करनेपर, भयानक अकाल पडनेपर और खलजनके संग होनेपर जो भागता है वह जीवता रहता है ॥ १९ ॥

* धर्मार्थकाममोक्षेषुयस्यकोपिनाविद्यते ॥
जन्मफलंहिमर्त्येषुमरणंतस्यकेवलम् ॥ २० ॥

दोहा-धर्मअर्थकामादिमें, अहै न एको जाहि ।
जन्म भयेको फल मिल्यो, केवल मरणहि ताहि ॥२० ॥

भा० -धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनमेंसे जिसको कोईभी न भया उसको मनुष्योंमें जन्म होनेका फल केवल मरण ही हुआ ॥ २० ॥

× मूर्खायत्रनपूज्यंतेधान्यंयत्रसुसंचितम् ॥
दांपत्यकलहोनास्तितत्रश्रीःस्वयमागता ॥ २१ ॥

दोहा-जहां अन्न संचित रहै, मूर्खमान नहिं पाव ।
दंपतिमें जहँ कलह नहीं, संपति आपुइआव ॥ २१ ॥

भा०-जहां मूर्ख नहीं पूजे जाते जहां अन्न संचित रहता है और जहां स्त्रीपुरुषमें कलह नहीं होता वहां आपही लक्ष्मी विराजमान रहती है ॥ २१ ॥

इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

आयुःकर्मचवित्तंचविद्यानिधनमेवच ॥
पंचैतानिहिसृज्यन्तेगर्भस्थस्यैवदेहिनः ॥ १ ॥

सोरठा-आयुर्बल औ धन कर्म, विद्या और मरणए ॥
नीति कहत अस मर्म, गर्भहिमें लिखि जात है॥१॥

भा०-यह निश्चय है कि, आयुर्दाय, कर्म, धन, विद्या और मरण ये पांचों जब जीव गर्भहीमें रहता है तबही लिखदिये जाते हैं ॥ १ ॥

साधुभ्यस्तेनिवर्तन्तेपुत्रामित्राणिबांधवाः ॥
येचतैःसहगंतारस्तद्धर्मात्सुकृतंकुलम् ॥ २ ॥

दोहा-बांधवजन सुत मित्र वे, रहत साधु प्रतिकूल ॥
ताहि धर्म कुल सुकृत लहु, जो इनके अनुकूल॥२॥

भा०-पुत्र, मित्र, बन्धु ये साधु जनोंसे निवृत्त होजाते हैं और जो उनका संग करते हैं उनके पुण्यसे उनका कुल सुकृती होजाताहै ॥२॥

दर्शनध्यानसंस्पर्शैर्मत्सीकूर्मीचपाक्षिणी ॥
शिशुंपालयतेनित्यंतथासज्जनसंगतिः ॥ ३ ॥

दोहा-मच्छी पछिनी कच्छपी, दरस परस करिध्यान ।
शिशु पालै नित तैसहीं, सज्जन संगप्रमान ॥ ३ ॥

भा०-मछली, कछुई और पक्षी ये दर्शन ध्यान और स्पर्शसे जैसे बच्चोंको सर्वदा पालती हैं वैसेही सज्जनोंकी संगति ॥ ३ ॥

यावत्स्वस्थोह्ययंदेहोयावन्मृत्युश्चदूरतः ॥
तावदात्महितंकुर्यात्प्राणांतेकिंकरिष्यति ॥ ४ ॥

दोहा-जौलौं देह समर्थ है, जबलौं मरिबो दूरि ।
तौलौं आतमहित करै, प्राण अन्त सब धूरि ॥४॥

भा०—जबलौं देह निरोग है और जबलग मृत्यु दूर है तत्पर्यंत अपना हित पुण्यादि करना उचित है, प्राणके अंत होजानेपर कोई क्या करेगा ॥ ४ ॥

कामधेनुगुणाविद्याह्यकालेफलदायिनी ॥
प्रवासेमातृसदृशीविद्यागुप्तंधनंस्मृतम् ॥ ५ ॥

दोहा—विन औसरहु देत फल, कामधेनुसम नित्त ।
मातासी परदेशमें, विद्या संचित वित्त ॥ ५ ॥

भा०—विद्यामें कामधेनुके समान गुण है इसकारण कि, अकालमेंभी फल देती है, विदेशमें माताके समान है विद्याको गुप्त धन कहते हैं ॥ ५ ॥

+ एकोपिगुणवान्पुत्रोनिर्गुणैश्चशतैर्वरः ॥
एकश्चंद्रस्तमोहंतिनचताराःसहस्रशः ॥६ ॥

दोहा—सौनिर्गुनियनसे अधिक, एक पुत्र सुविचार ।
एक चंद्र तमको हरै, तारा नहीं हजार ॥ ६ ॥

भा०—एकभी गुणी पुत्र श्रेष्ठ है, सो सैकडों गुणरहितोंसे क्या? एकही चन्द्र अन्धकारको नष्ट करदेता है; सहस्र तारे नहीं ॥ ६ ॥

मूर्खश्चिरायुर्जातोऽपितस्माज्जातमृतोवरः ॥
मृतस्तुचाल्पदुःखाययावज्जीवंजडोदहेत् ॥ ७ ॥

दोहा—मूर्ख चिरायुनसे भलो, जन्मतही मरिजाय ।
मरे अलप दुख होइ है, जिये सदा दुखदाय ॥ ७ ॥

भा०—मूर्ख जातक चिरंजीवीभी हो उससे उत्पन्न होतेही जो मरगया वह श्रेष्ठ है. इसकारण कि, मरा थोडेही दुःखका कारण होता है. जड जबलों जीता है तबलों दाहता रहता है ॥ ७ ॥

+ कुग्रामवासः कुलहीनसेवाकुभोजनंक्रोधमुखीच ।

भार्या ॥ पुत्रश्चमूर्खोविधवाचकन्याविनाग्निना
षट्प्रदहंतिकायम् ॥ ८ ॥

दोहा–घर कुगांव सुत मूढ़ तिय, खलि नीचनिसेवकाइ॥
कुभच्छ सुता विधवा छवों, तन बिनु अग्निजराइ ॥ ८ ॥

भा०–कुग्राममें वास, नीच कुलकी सेवा, कुभोजन, कलही स्त्री, मूर्ख पुत्र, विधवा कन्या ये छः विनाआगही शरीरको जलातेहैं ॥ ८ ॥

किंतयाक्रियतेधेन्वायानदोग्ध्रीनगुर्विणी ॥
कोर्थःपुत्रेणजातेनयोनविद्वान्नभक्तिमान् ॥ ९ ॥

दोहा–कहा होय तेहि धेनु जो, दूध न गाभिन होय ॥
कौन अर्थ वहि सुत भये, पंडित भक्त न जोय ॥९॥

भा०–उस गायसे क्या लाभहै, जो न दूध देवै, न गाभिन होवे, ये और ऐसे पुत्र हुएसे क्या लाभ, जो न विद्वान् भया न भक्तिमान् ॥ ९ ॥

संसारतापदग्धानांत्रयोविश्रांतिहेतवः ॥
अपत्यंचकलत्रंचसतांसंगतिरेवच ॥ १० ॥

सोरठा–यह तीनै विश्राम, माह तपन जगतापमें ॥
हरै घोर भवधाम, पुत्र नारि सतसंग पुनि ॥१०॥

भा०–संसारके तापसे जलतेहुये पुरुषोंके विश्रामके हेतु तीनहैं, लड़का स्त्री और सज्जनोंकी संगति ॥ १०

सकृज्जल्पन्तिराजानःसकृज्जल्पंतिपंडिताः ॥
सकृत्कन्याःप्रदीयन्तेत्रीण्येतानिसकृत्सकृत् ॥ ११ ॥

दोहा–भूपति औ पंडितवचन, औ कन्याको दान ॥
एकै एकै बार ये, तीनों होत समान ॥ ११ ॥

भा०-राजालोग एकहीबार आज्ञा देते हैं, पंडित लोग एकहीबार बोलतेहैं, कन्याका दान एकहीवार होता है ये तीनों बातें एकबारही होतीहैं ॥ ११ ॥

एकाकिनातपोद्वाभ्यांपठनंगायनंत्रिभिः ॥
चतुर्भिर्गमनंक्षेत्रंपंचभिर्बहुभीरणम् ॥ १२ ॥

दोहा-तप एकहि द्वैसे पठन, गान तीन पथ चारि ।
कृषीपांच रन बहुतमिलि, असकह शास्त्रबिचारि ॥१२॥

भा०-अकेलेसे तप, दोसे पढ़ना, तीनसे गाना, चारसे पंथमें चलना, पांचसे खेती और बहुतोंसे युद्ध भलीभाँतिसे बनते हैं ॥ १२ ॥

\+ साभार्यायाशुचिर्दक्षासाभार्यायापतिव्रता ॥
साभार्यायापतिप्रीतासाभार्यासत्यवादिनी ॥ १३॥

दोहा-सत्य मधुर भाखे वचन, और चतुर शुचि होय ॥
पतिप्यारी औ पतिव्रता, तिया जानिये सोय॥१३॥

भा०-वहीभार्याहै; जो पवित्र और चतुर, वहीभार्या है;जो पतिव्रता है. वही भार्याहै; जिसपर पतिकी प्रीतिहै, वही भार्या है, जो सत्यबोलती है, अर्थात् दान मान पोषण पालनके योग्यहै ॥ १३ ॥

अपुत्रस्यगृहंशून्यंदिशःशून्यास्त्वबांधवाः ॥
मूर्खस्यहृदयंशून्यंसर्वशून्यादरिद्रता ॥ १४ ॥

दोहा-है अपुत्रका सून घर, बान्धवबिन दिशि सून ॥
मूरखको हिय सून है, दारिदको सब सून ॥१४॥

भा०-निपुत्रीका घर सूनाहै, बन्धुरहित दिशा शून्यहै. मूर्खका हृदय शून्य है और सर्वशून्य दरिद्रता है ॥ १४ ॥

अनभ्यासेविषंशास्त्रमजीर्णेभोजनंविषम् ॥
दरिद्रस्यविषंगोष्ठीवृद्धस्यतरुणीविषम् ॥ १५ ॥

दोहा-भोजन विष है विनुपचे, शास्त्रविना अभ्यास ।
सभा गरलसम रंकहि, बूढहि तरुनीपास ॥ १५॥
भा०-विनाअभ्याससे शास्त्र विष हो जाता है, विनापचे भोजन विष होजाता है, दरिद्रीको गोष्ठी विष और वृद्धको युवती विष जानपडती है ॥ ५ ॥

त्यजेद्धर्मंदयाहीनंविद्याहीनं गुरुंत्यजेत् ॥
त्यजेत्क्रोधमुखींभार्यांनिःस्नेहान्बांधवाँस्त्यजेत् १६

दोहा-दयारहित धर्महि तजै, औ गुरुविद्याहीन ।
क्रोधमुखी तिय प्रीतिबिनु,बान्धव त्यजै प्रवीन ॥१६॥
भा०-दयारहित धर्मको छोडदेना चाहिये, विद्याविहीन गुरुका त्याग उचित है, जिसके मुँहसे क्रोध प्रगट होता होय ऐसी भार्याको अलग करना चाहिये और विनाप्रीति बांधवोंका त्याग विहित है ॥ १६ ॥

अध्वाजरामनुष्याणांवाजिनांबन्धनंजरा ॥
अमैथुनंजरास्त्रीणांवस्त्राणामातपोजरा ॥ १७ ॥

दोहा-पंथ बुढ़ाई नरनकी, हयन बंध इक थाम ।
जरा अमैथुन तियन कह, औ वस्त्रनको घाम ॥ १७ ॥
भा०-मनुष्योंको बुढापन पंथ है, घोडेको बांधरखना वृद्धता है, स्त्रियोंको अमैथुन बुढापन है और वस्त्रोंको घाम वृद्धता है ॥ १७ ॥

कःकालःकानिमित्राणिकोदेशःकौव्ययागमौ ॥
कस्याहंकाचमेशक्तिरितिचिंत्यंमुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥

दोहा-हौं केहिको का शक्ति मम, कौन काल अरु देश ।
लाभखर्चका मित्रको, चिंता करै हमेश ॥ १८ ॥
भा०-किसकालमें क्या करना चाहिये, मित्र कौन है, देश कौन है, लाभ व्यय क्या है, किसका मैं हूं, मुझमें क्या शक्ति है ये सब वारंवार विचारना योग्य हैं ॥ १८ ॥

अग्निर्देवोद्विजातीनांमुनीनांहृदिदैवतम् ॥
प्रतिमास्वल्पबुद्धीनांसर्वत्रसमदर्शिनाम् ॥ १९ ॥

दोहा–ब्राह्मण क्षत्री वैश्यको, अग्नि देवता और ।
मुनिजनहिय मूरति अबुध,समदर्शिन सब ठौर ॥ १९ ॥

भा०–ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य उनका देवता अग्नि है. मुनियोंके हृदयमें देवता रहता है, अल्पबुद्धियोंके मूर्तिमें और समदर्शियोंको सब स्थानमें देवता है ॥ १९ ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

+ पतिरेवगुरुःस्त्रीणांसर्वस्याभ्यागतोगुरुः ॥
गुरुरग्निर्द्विजातीनांवर्णानांब्राह्मणोगुरुः ॥ १ ॥

दोहा–अभ्यागत सबको गुरु, नारिगुरु पति जान ।
द्विजन अग्निगुरु चारिहु, बरन विप्र गुरु मान ॥१॥

भा०–स्त्रियोंका गुरु पतिही है, अभ्यागत सबका गुरु, है ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इनका गुरु अग्नि है और चारोंवर्णोंका गुरु ब्राह्मण है ॥ १ ॥

यथाचतुर्भिःकनकंपरीक्ष्यतेनिघर्षणच्छेदनतापताडनैः ॥ तथाचतुर्भिःपुरुषःपरीक्ष्यतेत्यागेनशीलेनगुणेनकर्मणा ॥ २ ॥

दो०–जिमितपायघसिकाटिपिटि, सुवरनलखविधिचारि
त्याग शील गुण कर्म तिमि,चारिहि पुरुष विचारि॥२॥

भा०–घिसना, काटना, तपाना, पीटना इन चार प्रकारोंसे जैसे सोनाकी परीक्षा की जाती है वैसेही दान, शील, गुण और आचार इन चारों प्रकारोंसे पुरुषकीभी परीक्षा कीजाती है ॥ २ ॥

तावद्भयेषुभेतव्यंयावद्भयमनागतम् ॥
आगतंतुभयंदृष्ट्वाप्रहर्तव्यमशंकया ॥ ३ ॥

दोहा-जौलौं भय आवै नहीं, तौलौं डरे विचार ।
आये शंका छोडिकै, चाहिये कीन्ह प्रहार ॥ ३ ॥

भा०-तबतकही भयोंसे डरना चाहिये, जबतक नहीं आया और आयेहुये भयको देखकर प्रहार करना उचित है ॥ ३ ॥

एकोदरसमुद्भूताएकनक्षत्रजातकाः ॥
नभवंतिसमाःशीलैर्यथाबदरिकंटकाः ॥ ४ ॥

दोहा-एकहि गर्भ न छत्रमें, जायमान यदि होय ।
नहीं शील सम होतहै, बेर कांट सम दोय ॥ ४ ॥

भा०-एकही गर्भसे उत्पन्न और एकही नक्षत्रमें जायमान शील में समान नहीं होते जैसे बेर और उसके कांटे ॥ ४ ॥

निःस्पृहोनाधिकारीस्यान्नाकामोमंडनप्रियः ॥
नाविदग्धःप्रियंब्रूयात्स्पष्टवक्तानवंचकः ॥ ५ ॥

दोहा-नहिं निस्पृह अधिकार गहु, नहिं भूषण निहकाम ।
नहिं अचतुर प्रिय बोलु नहिं; वंचक साफ कलाम ॥ ५ ॥

भा०-जिसको किसी विषयकी वांछा न होगी वह किसी विषय का अधिकार नहीं लेगा, जो कामी न होगा वह शरीरकी शोभा करने वाली वस्तुओंमें प्रीति नहीं रक्खेगा. जो चतुर न होगा वह प्रिय नहीं बोल सकैगा. और स्पष्ट कहनेवाला छली नहीं होगा ॥ ५ ॥

मूर्खाणांपंडिताद्वेष्याअधनानांमहाधनाः ॥
दुर्भगाणांचसुभगाःकुलटानांकुलांगनाः ॥ ६ ॥

दोहा-मूरख द्वेषी पण्डितहि, धनहीनहिं धनमान ।
परकीया स्वकियाहुकी, विधवा सुभगा जान ॥६॥

भा०–मूर्ख पंडितोंसे, दरिद्री धनियोंसे, व्यभिचारिणी कुलस्त्रियोंसे और विधवा सुहागिनियोंसे बुरा मानती हैं ॥ ६ ॥

आलस्योपहताविद्यापरहस्तगतंधनम् ॥
अल्पबीजंहतंक्षेत्रंहतंसैन्यमनायकम् ॥ ७ ॥

दोहा–आलसते विद्या नशै, धन औरनके हाथ ।
अल्पबीजसे खेत नशै, दल दलपति बिनु साथ ॥७॥

भा०–आलस्यसे विद्या, दूसरेके हाथमें जानेसे धन, बीजकी न्यूनतासे खेत, सेनापतिके बिना सेना नष्ट होजाती है ॥ ७ ॥

अभ्यासाद्धार्यतेविद्याकुलंशीलेनधार्यते ॥
गुणेनज्ञायतेत्वार्यःकोपोनेत्रेणगम्यते ॥ ८ ॥

दोहा–कुलशीलते धारिये, विद्या करि अभ्यास ।
गुणते जानहिं श्रेष्ठ कहँ, नयनहि कोप निवास ॥८॥

भा०–अभ्याससे विद्या, सुशीलतासे कुल, गुणसे भला मनुष्य और नेत्रसे कोप ज्ञात होताहै ॥ ८ ॥

वित्तेनरक्ष्यतेधर्मोविद्यायोगेनरक्ष्यते ॥
मृदुनारक्ष्यतेभूपःसत्स्त्रियारक्ष्यतेगृहम् ॥ ९ ॥

दोहा–विद्या रक्षित योगते, मृदुतासे भूपाल ॥
रक्षित गेह सुतीयते, धनते धरम विशाल ॥ ९ ॥

भा०–धनसे धर्मकी, यम नियम आदि योगसे ज्ञानकी, मृदुतासे राजाकी, भली स्त्रीसे घरकी रक्षा होतीहै ॥ ९ ॥

अन्यथावेदपाण्डित्यंशास्त्रमाचारमन्यथा ॥
अन्यथायद्वदच्छांतंलोकाःक्लिश्यन्तिचान्यथा १०॥

दोहा–वेद शास्त्र आचार औ, शान्तह और प्रकार ।
जे कहते लहते वृथा, लोग कलेश अपार ॥ १० ॥

भा०-वेदके पांडित्यको व्यर्थ प्रकाश करनेवाला, शास्त्र और उस आचारके विषयमें व्यर्थ विवाद करनेवाला, शांत पुरुषको अन्यथा कहनेवाला, ये लोग व्यर्थही क्लेश उठाते हैं ॥ १० ॥

दारिद्र्यनाशनंदानंशीलंदुर्गतिनाशनम् ॥
अज्ञाननाशिनीप्रज्ञाभावना भयनाशिनी ॥ ११ ॥

सोरठा-दारिद नाशै दान, शील दुर्गतिहि नाशियत ॥
बुद्धि नाश अज्ञान, भय नाशतहै भावना ॥११॥

भा०-दान दरिद्रताका, सुशीलता दुर्गतिका, बुद्धि अज्ञानका, और भक्ति भयका नाश करती है ॥ ११ ॥

नास्तिकामसमोव्याधिर्नास्तिमोहसमोरिपुः ॥
नास्तिकोपसमोवह्निर्नास्तिज्ञानात्परंसुखम् ॥१२॥

सो०-व्याधि न काम समान, रिपु नहिं दूजो मोहसम॥
अग्नि कोपसो आन, नहीं ज्ञानसे सुखपरे ॥ १२ ॥

भा०-कामके समान दूसरी व्याधि नहीं है, अज्ञानके समान दूसरा बैरी नहीं है, क्रोधके तुल्य दूसरी आग नहीं है, ज्ञानके तुल्य सुख नहीं है ॥ १२ ॥

जन्ममृत्यूहियात्येकोभुनक्त्येकःशुभाशुभम् ॥
नरकेषुपतत्येकएकोयातिपराङ्गतिम् ॥ १३॥

सोरठा-जन्ममृत्यु लहु एक, भोगत है इक शुभ अशुभ ॥
नरक जात है एक, लहत एकही मुक्तिपद ॥१३॥

भा०-यह निश्चय है कि, एकही पुरुष जन्ममरण पाता है, सुख दुःख एकही भोगता है, एकही नरकोंमें पडता है और एकही मोक्ष पाता है, अर्थात् इनकामोंमें कोई किसीकी सहायता नहीं करसकता ॥१३॥

तृणंब्रह्मविदः स्वर्गतृणंशूरस्यजीवितम् ॥
जिताक्षस्यतृणंनारीनिस्पृहस्यतृणंजगत् ॥ १४ ॥

दोहा-ब्रह्मज्ञानि हि स्वर्ग तृण, जितइन्द्रिय तृण नार ॥
शूरहि तृण है जीवनो, निस्पृह कहँ संसार ॥ १४ ॥

भा०-ब्रह्मज्ञानीको स्वर्ग तृण है, शूरको जीवन तृण है, जिसने इन्द्रियोंको वश किया उसे स्त्री तृणके तुल्य जानपडतीहैं, निस्पृहको जगत् तृण है ॥ १४ ॥

विद्यामित्रंप्रवासेषुभार्यामित्रंगृहेषुच ॥
व्याधितस्यौषधं मित्रंधर्मोमित्रंमृतस्यच ॥ १५ ॥

दोहा-विद्या मित्र विदेशमें, घर तिय मीत सप्रीत ।
रोगिहि औषध अरु मरे, धर्म होत है मीत ॥ १५ ॥

भा०-विदेशमें विद्या मित्र होती है, गृहमें भार्या मित्र है, रोगीका मित्र औषध है और मरेका मित्र धर्म है ॥ १५ ॥

वृथावृष्टिःसमुद्रेषुवृथातृप्तेषुभोजनम् ॥
वृथादानंधनाढ्येषुवृथादीपोदिवापिच ॥ १६ ॥

दोहा-व्यर्थ वृष्टि समुद्रमें, तृप्तहि भोजनदान ।
धनिकहि देनो व्यर्थहै, व्यर्थ दीप दिनमान ॥ १६ ॥

भा०-समुद्रमें वर्षा वृथा है और भोजनसे तृप्तको भोजन निरर्थक है धनीको धन देना व्यर्थ है और दिनमें दीप व्यर्थ है ॥ १६ ॥

नास्तिमेघसमंतोयंनास्तिचात्मसमंबलम् ॥
नास्तिचक्षुःसमंतेजोनास्तिचान्नसमंप्रियम् ॥ १७ ॥

दो०-दूजो जल नहिं मेघसम, बल आतमहि समान ॥
नहिं प्रकाश है नैनसम, प्रिय अनाजसम आन ॥ १७ ॥

भा०-मेघके जलके समान दूसरा जल नहीं होता, अपने बलसमान दूसरेका बल नहीं. इसकारण कि, समयपर काम आताहै. नेत्रके तुल्य दूसरा प्रकाश करनेवाला नहीं है और अन्नके सदृस दूसरा प्रिय पदार्थ नहीं है ॥ १७ ॥

अधनाधनमिच्छन्तिवाचंचैवचतुष्पदाः ॥
मानवाःस्वर्गमिच्छंतिमोक्षमिच्छंतिदेवताः ॥ १८॥
दोहा-अधनी धनको चाहते, औ पशु होन वाचाल ॥
नर चाहत हैं स्वर्गको, सुरगण मुक्ति विशाल ॥ १८॥
भा०-धनहीन धन चाहते हैं और पशु वचन, मनुष्य स्वर्ग चाहते हैं और देवता मुक्तिकी इच्छा रखते हैं ॥ १८ ॥

सत्येनधार्यतेपृथ्वीसत्येनतपतेरविः ॥ +
सत्येनवातिवायुश्चसर्वंसत्येप्रतिष्ठितम् ॥ १९ ॥
दोहा-सत्यहि ते रवि तपत है, सत्यहि पर भुवभार ।
बहै पवनहू सत्यते, सत्यहि सब आधार ॥ १९ ॥
भा०-सत्यसे पृथ्वी स्थिर है और सत्यहीसे सूर्य तपते हैं सत्यहीसे वायु बहती है, सब सत्यहीसे स्थिर है ॥ १९ ॥

चलालक्ष्मीश्चलाःप्राणाश्चलेजीवितमंदिरे ॥ +
चलाचलेचसंसारेधर्मएकोहिनिश्चलः ॥ २० ॥
दोहा-चल लक्ष्मी औ प्राणहू, और जीविका धाम ।
येहु चलाचल जगतमें, अचल धर्मअभिराम ॥२०॥
भा०-लक्ष्मी नित्य नहीं है, प्राण, जीवन और घर ये सब स्थिर नहीं है. निश्चय है कि, इस चराचर संसारमें केवल धर्मही निश्चल है ॥ २० ॥

नराणांनापितोधूर्तःपक्षिणांचैववायसः ॥
चतुष्पदांसृगालस्तुस्त्रीणांधूर्ताचमालिनी ॥ २१ ॥
दोहा-नरमें नाई धूर्त है, मालिनि नारि लखाहिं ।
चौपायनमेंस्यार है, वायस पक्षिन माहिं ॥ २१ ॥
भा०-पुरुषोंमें नापित और पक्षियोंमें कौवा वंचक होता है. पशुओंमें सियार वंचक होता है और स्त्रियोंमें मालिन धूर्त होती है ॥ २१ ॥

जनिताचोपनेताचयस्तुविद्यांप्रयच्छति ॥
अन्नदाताभयत्रातापंचैतेपितरःस्मृताः ॥ २२ ॥

दोहा-पितु आचारज अन्नप्रद, भयरक्षक जो कोय ।
विद्यादाता पाँच यह, मनुज पिता सम होय ॥२२॥

भा०-जन्मानेवाला, यज्ञोपवीत आदि संस्कार करानेवाला, जो विद्या देताहै, अन्नदेनेवाला, भयसे बचानेवाला ये पांच पिता गिने जाते हैं ॥ २२ ॥

राजपत्नी गुरोःपत्नी मित्रपत्नी तथैव च ॥
पत्नीमातास्वमाताचपंचैतामातरःस्मृताः ॥ २३ ॥

दोहा-राजतिया औ गुरुतिया, मित्रतियाहू जान ।
निजमाता औ सासु ये, पाँचौ मातु समान ॥२३॥

भा०-राजाकी भार्या, गुरुकी स्त्री, वैसेही मित्रकी पत्नी, सास और अपनी जननी इन पाँचोंको माता कहते हैं ॥ २३ ॥

इति पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

श्रुत्वाधर्मविजानातिश्रुत्वात्यजतिदुर्मतिम् ॥
श्रुत्वाज्ञानमवाप्नोतिश्रुत्वामोक्षमवाप्नुयात् ॥ १ ॥

दोहा-सुनिके जानै धर्मको, सुनि दुर्बुधि तजि देत ।
सुनिके पावै ज्ञानहू, सुने मोक्षपद लेत ॥ १ ॥

भा०-मनुष्य शास्त्रको सुनकर धर्मको जानता है दुर्बुद्धिको छोडता है, ज्ञान पाता है, तथा मोक्ष पाता है ॥ १ ॥

काकःपक्षिषुचांडालःपशूनांचैवकुक्कुरः ॥
पापोमुनीनांचांडालःसर्वेषांचैवनिंदकः ॥ २ ॥

दोहा-वायस पक्षिन पशुन महँ, श्वान अहे चंडाल ।
मुनियनमें जेहि पाप उर, सबमें निंदक काल ॥ २ ॥

भा०-पक्षियोंमें कौवा और पशुओंमें कुक्कुर चांडाल होताहै, मुनियोंमें चाडाल पाप है, और सबमें चांडाल निन्दक है ॥ २ ॥

भस्मनाशुध्यतेकांस्यंताम्रमम्लेनशुध्यति ॥
रजसाशुध्यतेनारीनदीवेगेनशुध्यति ॥ ३ ॥

दोहा-कांस होत शुचि भस्मसे, ताम्र खटाई धोइ ॥
रजोधर्मते नारि शुचि, नदी वेगसे होइ ॥ ३ ॥

भा०-कांसेका पात्र राखसे, तांबेका अम्ल खटाईसे, स्त्री रजस्वला होनेपर और नदी धाराके वेगसे पवित्र होती है ॥ ३ ॥

भ्रमन्सपूज्यतेराजाभ्रमन्संपूज्यतेद्विजः ॥
भ्रमन्सपूज्यतेयोगीस्त्रीभ्रमन्तीविनश्यति ॥ ४ ॥

दोहा-पूजि जात है भ्रमनसे, द्विज योगी औ भूप ॥
भ्रमन किये नारी नशै, ऐसी नीति अनूप ॥ ४ ॥

भा०-भ्रमन करनेवाले राजा, ब्राह्मण, योगी पूजित होतेहैं; परंतु स्त्री घूमनेसे नष्ट होजाती है ॥ ४ ॥

यस्यार्थास्तस्यमित्राणियस्यार्थास्तस्यबान्धवाः ॥
यस्यार्थाःसपुमाँल्लोकेयस्यार्थःसचपंडितः ॥ ५ ॥

दोहा-मित्र और हैं बंधु तेहि, सोइ पुरुष गणजात ॥
धन है जाके पासमें, पंडित सोइ कहात ॥ ५ ॥

भा०-जिसके धन है उसीके मित्र और उसीके बांधव होतेहैं और वही पुरुष गिना जाताहै और वही पंडित कहाता है ॥ ५ ॥

तादृशीजायतेबुद्धिर्व्यवसायोपितादृशः ॥
सहायास्तादृशाएवयादृशीभवितव्यता ॥ ६ ॥

दोहा–तैसोई मति होत है, तैसोई व्यवसाय ॥
होनहार जैसो रहै, तैसोइ मिलत सहाय ॥ ६ ॥

भा०–वैसेही बुद्धि और वैसाही उपाय होता है और वैसेही सहायक मिलते हैं जैसा होनहार है ॥ ६ ॥

+ कालःपचतिभूतानिकालःसंहरतेप्रजाः ॥
कालःसुप्तेषुजागर्तिकालोहिदुरतिक्रमः ॥ ७ ॥

दोहा–काल पचावत जीव सब, करत प्रजन संहार ॥
सबके सोयउ जागियतु, काल टरै नहिं टार ॥७॥

भा०–काल सब प्राणियोंको पचाता है और कालही सब प्रजाका नाश करता है, सब पदार्थके लय होजानेपर काल जागता रहता है कालको कोई नहीं टालसक्ता ॥ ७ ॥

नपश्यंतिचजन्मान्धाःकामान्धोनैवपश्यति ॥
मदोन्मत्तानपश्यंतिअर्थीदोषंनपश्याति ॥ ८ ॥

दोहा–जन्म अंध देखैं नहीं, कामअंध तसजान ॥
तैसोई मदअंधहैं, अर्थी दोष न मान ॥ ८ ॥

भा०–जन्मके अन्धे नहीं देखते, कामसे जो अन्धा होरहाहै उसको सूझता नहीं, मदोन्मत्त किसीको देखते नहीं और अर्थी दोषको नहीं देखता ॥ ८ ॥

स्वयंकर्मकरोत्यात्मास्वयंतत्फलमश्नुते ॥
स्वयंभ्रमतिसंसारेस्वयंतस्माद्विमुच्यते ॥ ९ ॥

दोहा–जीव कर्म आपै करै, भोगत फलहू आप ॥
आप भ्रमत संसारमें, मुक्ति लहतहै आप ॥ ९ ॥

भा०–जीव आपही कर्म करता है और उसका फलभी आपही भोगताहै, आपही संसारमें भ्रमता है और आपही उससे मुक्तभी होताहै ॥ ९ ॥

राजाराष्ट्रकृतंपापंराज्ञःपापंपुरोहितः ॥
भर्ताचस्त्रीकृतंपापंशिष्यपापंगुरुस्तथा ॥ १० ॥

दोहा-प्रजापाप नृप भोगियत, प्रोहित नृपको पाप ।
तियपातक पति शिष्यको, गुरु भोगत है आप ॥ १० ॥

भा०-अपने राज्यमें कियेहुये पापको राजा और राजाके पापको पुरोहित भोगता है, स्त्रीकृतपापको स्वामी भोगताहै, वैसेही शिष्यके पापको गुरु ॥ १० ॥

ऋणकर्तापिताशत्रुर्माताचव्यभिचारिणी ॥
भार्यारूपवतीशत्रुःपुत्रःशत्रुरपण्डितः ॥ ११ ॥

दोहा-ऋणकर्ता पितु शत्रु पर,-पुरुषगामिनी मात ।
रूपवती तिय शत्रु है, शत्रु अपण्डित जात ॥ ११ ॥

भा०-ऋण करनेवाला पिता शत्रु है, व्यभिचारिणी माता, और सुन्दरी स्त्री शत्रु है और मूर्ख पुत्र वैरी है ॥ ११ ॥

लुब्धमर्थेनगृह्णीयात्स्तब्धमंजलिकर्मणा ॥
मूर्खंछंदानुवृत्त्याचयथार्थत्वेनपण्डितम् ॥ १२ ॥

दोहा-धनसे लोभी वश करै, गर्विहि जोरि स्वपान ।
मूरखके अनुसरि चले, बुधजन सत्य कहान ॥ १२ ॥

भा०-लोभीको धनसे, अहंकारीको हाथ जोडनेसे, मूर्खको उसके अनुसार वर्तनेसे और पंडितको सच्चाईसे वश करना चाहिये ॥ १२ ॥

वरंनराज्यंनकुराजराज्यंवरंनमित्रंनकुमित्रमित्रम् ॥
वरंनशिष्योनकुशिष्यशिष्योवरंनदारानकुदारदारा १३

दोहा-नहिं कुराज विनु राज भल, त्यों कुमीत हू मीत ।
शिष्यबिनौ बरु है भलो, त्यों कुदार कहुनीत ॥ १३ ॥

भा०-राज्य न रहना यह अच्छा परन्तु कुराजाका राज्य होना

यह अच्छा नहीं. मित्रका न होना यह अच्छा, परन्तु कुमित्रको मित्र करना अच्छा नहीं. शिष्य नहो यह अच्छा परन्तु निंदित शिष्य कहलावे यह अच्छा नहीं. भार्या न रहै यह अच्छा पर कुभार्यांका भार्या होना अच्छा नहीं ॥ १३ ॥

कुराजराज्येनकुतःप्रजासुखंकुमित्रमित्रेणकुतोनिवृत्तिः ॥ कुदारदारैश्चकुतोगृहेरतिःकुशिष्यमध्यापयतःकुतोयशः ॥ १४ ॥

दोहा–कहँ कुराजते प्रजहि सुख, लहि कुमीत सुख केह ।
कहँ कुशिष्यते यश मिलै, नहिं कुनारि रति गेह १४

भा०–दुष्ट राजाके राज्यसे प्रजाको सुख और कुमित्र मित्रसे आनन्द कैसे होसक्ता है? दुष्ट स्त्रीसे गृहमें प्रीति और कुशिष्यके पढानेवालेकी कीर्ति कैसी होगी ॥ १४ ॥

सिंहादेकंबकादेकंशिक्षेच्चत्वारिकुक्कुटात् ॥
वायसात्पंचशिक्षेच्चषट्शुनस्त्रीणिगर्दभात् ॥ १५ ॥

दोहा–एक एक बक सिंहसे, चारि कुकुट गुणलीन ।
पांच काकते श्वानते, षट गर्दभसे तीन ॥ १५ ॥

भा०–सिंहसे एक, व कक्कुट (मुर्गा) से चार, कौवेसे पांच, कुत्तेसे छः और गदहेसे तीन गुण सीखना उचित है ॥ १५ ॥

प्रभूतंकार्यमल्पंवायन्नरःकर्तुमिच्छति ॥
सर्वारंभेणतत्कार्यंसिंहादेकंप्रचक्षते ॥ १६ ॥

दोहा–जो कारज करनीय है, बहुत होय वा नेक ।
सबै जतनसे कीजिये, यही सिंहगुण एक ॥ १६ ॥

भा०–कार्य छोटा हो वा बडा जो करणीय हो, उसको सब प्रकारके प्रयत्नसे करना उचित है, उस एकको सिंहसे सीखना कहते हैं ॥ १६ ॥

इंद्रियाणिचसंयम्यबकवत्पंडितोनरः ॥
देशकालबलंज्ञात्वासर्वकार्याणिसाधयेत् ॥ १७ ॥

दोहा-करि संयम इंद्रियनको, पंडित बगुल समान ।
देश काल बल जानिकै, कारज करैं सुजान ॥ १७ ॥

भा०-विद्वान् पुरुषको चाहिये कि, इन्द्रियोंका संयम करके देश काल और बलको समझकर बगुलाके समान सब कार्यको साधे ॥ १७ ॥

प्रत्युत्थानंचयुद्धंचसंविभागंचबन्धुषु ॥
स्वयमाक्रम्यभोगंचशिक्षेच्चत्वारिकुक्कुटात् ॥ १८ ॥

दोहा-युद्ध भोग आक्रमण करि, उचित समयपर जाग ।
यही चारि गुण कुकुटके, देन बन्धुजन भाग ॥ १८ ॥

भा०-उचितसमयमें जागना, रणमें उद्यत रहना और बन्धुओंको उनका भाग देना और आप आक्रमण करके भोग करना इन चार बातोंको कुक्कुट (मुर्गा) से सीखना चाहिये ॥ १८ ॥

गूढंचमैथुनंधाष्टर्यंकालेचालयसंग्रहम् ॥
अप्रमादमविश्वासंपंचशिक्षेच्चवायसात् ॥ १९ ॥

दोहा-मैथुन गुप्त रु धृष्टता, अवसर संग्रह गेह ।
अप्रमाद विश्वास तजि, पंच काकबुधि लेह ॥ १९ ॥

भा०-छिपकर मैथुन करना, धैर्य करना, समयमें घरसंग्रह करना, सावधान रहना और किसीपर विश्वास न करना, इन पांचोंको कौवेसे सीखना उचित है ॥ १९ ॥

बह्वाशीस्वल्पसंतुष्टःसुनिद्रोलघुचेतनः ॥
स्वामिभक्तश्चशूरश्चषडेतेश्वानतोगुणाः ॥ २० ॥

दोहा-बहु अहार थोरेहि तृपित, सुख सोवत झट जाग ।
छहगुण श्वानके शूरता, अरु स्वामी अनुराग ॥ २० ॥

भा०—बहुत खानेकी शक्ति रहतेभी थोडेहीसे सन्तुष्ट होना, गाढ़निद्रा रहतेभी झटपट जागना, स्वामिकी भक्ति और शूरता इन छः गुणोंको कुत्तेसे सीखना चाहिये ॥ २० ॥

सुश्रांतोऽपिवहेद्भारंशीतोष्णेनचपश्यति ॥
संतुष्टश्चरतेनित्यंत्रीणिशिक्षेच्चगर्दभात् ॥ २१ ॥

दोहा—थक्यो भार ढोयो करै, शीत घाम समझैन ।
गर्दभके गुण तीनिये, फिरै सदाही चैन ॥ २१ ॥

भा०—अत्यन्त थकजानेपरभी बोझको ढोते जाना, शीत और उष्णपर दृष्टि न देना, सदा सन्तुष्ट होकर विचरना, इन तीन बातोंको गदहेसे सीखना चाहिये ॥ २१ ॥

यएतान्विंशतिगुणानाचरिष्यतिमानवः ॥
कार्यावस्थासुसर्वासुअजेयःसभविष्यति ॥ २२ ॥

दोहा—जे नर धारण करत हैं, यह उत्तम गुण बीस ।
होय विजय सब काममें, तिनकी बीसौ बीस॥२२॥

भा०—जो नर इन बीस गुणोंको धारण करेगा वह सदा सब कार्योंमें विजयी होगा ॥ २२ ॥

इति षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

अर्थनाशंमनस्तापंगृहिणीचरितानिच ॥
नीचवाक्यंचापमानंमतिमान्नप्रकाशयेत् ॥ १ ॥

दोहा—अर्थनाश गृहिणीचरित, औ मनको संताप ।
नीचवचन अपमानको, बुधजन कहत न आप॥१॥

भा०—धनका नाश, मनका ताप, गृहिणीका चरित, नीचका वचन और अपमान बुद्धिमान् प्रकाश न करै ॥ १ ॥

धनधान्यप्रयोगेषुविद्यासंग्रहणेषुच ॥
आहारेव्यवहारेचत्यक्तलज्जःसुखीभवेत् ॥ २ ॥

दोहा–विद्यासंग्रह करनमें, अन धनके व्यौपार ।
छोड़े लज्जा सुख लहै, तभी अहार व्योहार ॥२॥

भा०–अन्न और धनके व्यापारमें विद्याके संग्रह करनेमें आहार और व्यवहारमें जो पुरुष लज्जाको दूर रक्खैगा वह सुखी होगा॥२॥

संतोषामृततृप्तानांयत्सुखंशांतिरेवच ॥
नचतद्धनलुब्धानामितश्चेतश्चधावताम् ॥ ३ ॥

दोहा–जो सुख संतोषी लहत, तोष अमिय करिपान ।
सो सुख लोभिनको नहीं,धाइ तजत जे प्रान ॥३॥

भा०–संतोषरूप अमृतसे जो लोग तृप्त होते हैं उनको जो शांति सुख होता है वह धनके लोभसे जो इधर उधर दौडा करते हैं उनको नहीं होता ॥ ३ ॥

संतोषस्त्रिषुकर्तव्यःस्वदारेभोजनेधने ॥
त्रिषुचैवनकर्तव्योऽध्ययनेजपदानयोः ॥ ४ ॥

दोहा–निजातिय भोजन विभवमें, सदा राखिये तोष ।
पढिवो जप औ दानमें, है संतोषै दोष ॥ ४ ॥

भा०–अपनी स्त्री, भोजन और धन, इन तीनोंमें सन्तोष करना चाहिये. पढना, जप और दान इन तीनोंमें सन्तोष कभी नहीं करना चाहिये ॥ ४ ॥

विप्रयोर्विप्रवह्न्योश्चदंपत्योःस्वामिभृत्ययोः ॥
अन्तरेणनगंतव्यंहलस्यवृषभस्यच ॥ ५ ॥

दोहा–द्वै द्विज औ द्विज अग्निहूं,स्वामिभृत्य पति नारि ।
तैसेही हरबैलको, बीच जाइये वारि ॥ ५ ॥

भा०-दो ब्राह्मण, ब्राह्मण और अग्नि, स्त्री पुरुष, स्वामी भृत्य, हर और बैल इनके मध्य होकर नहीं जाना चाहिये ॥ ५ ॥

पादाभ्यांनस्पृशेदग्निंगुरुंब्राह्मणमेवच ॥
नैवगांनकुमारींचनवृद्धंनशिशुंतथा ॥ ६ ॥

दोहा-विप्र कुमारी अग्नि गुरु, वृद्ध बाल अरु गाय ।
इन्हैं कदापि न कीजिये, सपरश पाँय छुआय ॥६॥

भा०-अग्नि, गुरु और ब्राह्मण इनको और गौको, कुमारीको, वृद्धको और बालकको पैरसे न छूना चाहिये ॥ ६ ॥

शकटंपंचहस्तेनदशहस्तेनवाजिनम् ॥
हस्तिनंतुसहस्रेणदेशत्यागेनदुर्जनम् ॥७॥

दोहा-पाँच हाथ गाडीनसे, दश घोडनसे दूर ।
औ हजार हाथीनसे, तजहि देश जहँ क्रूर ॥ ७॥

भा०-गाडीको पांच हाथपर, घोडेको दश हाथपर, हाथीको हजार हाथपर, दुर्जनको देशत्यागकरके छोड़ना चाहिये ॥ ७ ॥

हस्तीह्यंकुशमात्रेणवाजीहस्तेनताड्यते ॥
शृंगीलकुटहस्तेनखड्गहस्तेनदुर्जनः ॥ ८ ॥

दोहा-गज अंकुश औ हाथसे, अश्व ताडना देय ।
शृंगिनकहँ लकुटी किये, दुष्ट खड्ग कर लेय ॥८॥

भा०-हाथी केवल अंकुशसे, घोडा हाथसे, सींगवाले जीव लाठीसे और दुर्जन तरवारसंयुक्त हाथसे दंड पाता है ॥ ८ ॥

तुष्यन्तिभोजनेविप्रामयूराघनगर्जिते ॥
साधवःपरसंपत्तौखलाःपरविपत्तिषु ॥ ९ ॥

दोहा-मोर मेघगर्जनसमय, विप्र सुभोजन खाय ।
साधु तुष्ट परसुख भये, खल परदुख हरखाय ॥९॥

भा०-भोजनके समय ब्राह्मण और मेघके गर्जनेपर मयूर, दूस-

रेको सम्पत्ति प्राप्त होनेपर साधू और दूसरेको विपत्ति आनेपर दुर्जन सन्तुष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

अनुलोमेनबलिनंप्रतिलोमेनदुर्बलम् ॥
आत्मतुल्यबलंशत्रुंविनयेनबलेनवा ॥ १० ॥

दो०-बलिहितासुअनुकूलचलि, अबलिहिचलिप्रतिकूल॥
सब बलते वा विनयते, करि अरि निजसमतूल ॥ १० ॥

भा०-बली वैरीको उसके अनुकूल व्यवहार करनेसे यदि वह दुर्बल हो तो उसे प्रतिकूलतासे वश करै, बलमें अपने समान शत्रुको विनयसे अथवा बलसे जीतै ॥ १० ॥

बाहुवीर्यबलंराज्ञोब्राह्मणोब्रह्मविद्बली ॥
रूपयौवनमाधुर्यंस्त्रीणांबलमनुत्तमम् ॥ ११ ॥

दोहा-ब्राह्मणका बल वेद है, अहै बाहुबल भूप ।
तरुणाई औ मधुरता, पुनि अबलन बल रूप ॥११॥

भा०-राजाको बाहुवीर्य बल: है और ब्राह्मण ब्रह्मज्ञानी वा वेदपाठी बली होता है और स्त्रियोंका सुन्दरता, तरुणता और मधुरता अति उत्तम बल है ॥ ११ ॥

नात्यन्तंसरलैर्भाव्यंगत्वापश्यवनस्थलीम् ॥
छिद्यंतेसरलास्तत्रकुब्जास्तिष्ठंतिपादपाः ॥ १२ ॥

दोहा-नहिं अति सरल सुभावते, रहन उचित जगमाहिं ।
काटैं सीधे वृक्षको, टेढन पूछैं नाहिं ॥ १२ ॥

भा०-सीधे वृक्ष स्वभावसे नहीं रहना चाहिये. इसकारण कि, वनमें जाकर देखो, सीधे वृक्ष काटे जाते हैं और टेढे खडे रहते हैं ॥ १२ ॥

यत्रोदकंतत्रवसंतिहंसास्तथैवशुष्कंपरिवर्जयंति ॥
नहंसतुल्येननरेणभाव्यंपुनस्त्यजंतःपुनराश्रयन्तः १३

दोहा-बसै हंस जहँ जल रहै, सूखे तेहि तज जाहिं ।
ग्रहण त्यागि पुनिपुनि नरहि, हंससरिस भल नाहिं॥१३॥

भा०-जहां जल रहता है वहांही हंस बसते हैं, वैसेही सूखे सरको छोड देते हैं; नरको हंसके समान नहीं रहना चाहिये कि, वे बारबार छोड देते हैं और बारबार आश्रय लेते हैं ॥ १३ ॥

उपार्जितानांवित्तानांत्यागएवहिरक्षणम् ॥
तडागोदरसंस्थानांपरिस्रवइवांभसाम् ॥ १४ ॥

दोहा-अर्जितधनको त्यागही, रक्षा गावत नीति ।
जस तडागके बीचके, जल निकसनकी रीति॥१४॥

भा०-अर्जित धनोंको व्यय करनाही रक्षा है, जैसे तडागके भीतरके जलका निकलना ॥ १४ ॥

यस्यार्थस्तस्यमित्राणियस्यार्थस्तस्यबांधवाः ॥
यस्यार्थःसपुमाँल्लोकेयस्यार्थःसचजीवति ॥ १५ ॥

दोहा-जाहि अर्थ तेहि मित्र अरु, बन्धु आदि सब तात ।
सो जीवत है जगतमें, सोइ पुरुष गनि जात॥१५॥

भा०-जिसके धन रहता है उसीके मित्र होते हैं जिसके पास अर्थ रहता है उसीके बन्धु होते हैं जिसके धन रहता है वह पुरुष गिना जाता है और जिसके अर्थ है वही जीता है ॥ १५ ॥

स्वर्गस्थितानामिहजीवलोकेचत्वारिचिह्नानिव-
संतिदेहे ॥ दानप्रसंगोमधुराचवाणीदेवार्चनंब्रा-
ह्मणतर्पणंच ॥ १६ ॥

दोहा-स्वर्गी चिह्न मनुष्यके, यही चार पहँचान ।
मधुर वचन देवार्चन, दान विप्रको मान ॥ १६ ॥

भा०-संसारमें आनेपर स्वर्गवासियोंके शरीरमें चार चिह्न रहते हैं,

दानकास्वभाव, मीठावचन, देवताकी पूजा, ब्राह्मणको तृप्तकरना अर्थात् जिनलोगोंमे दानआदि लक्षण रहैं उनको जानना चाहिये कि स्वर्गवासी उन्होंने अपने पुण्यके प्रभावसे मृत्युलोकमें अवतारलियेंहैं ॥ १६ ॥

अत्यन्तकोपःकटुकाचवाणीदारिद्रताचस्वजने-
षुवैरम् ॥ नीचप्रसंगःकुलहीनसेवाचिह्नानिदेहे
नरकास्थितानाम् ॥ १७ ॥

दोहा—अतिहिकोप कटुवचनहूं, दारिद नीच मिलान ॥
स्वजनवैर अकुलिन टहल, यह षटनर्क निसान ॥१७॥

भा०—अत्यन्त क्रोध, कटुवचन, दरिद्रता, अपने जनोंमें वैर नीचका संग कुलहीनकी सेवा ये चिह्न नरकवासियोंके देहमें रहतेहैं ॥ १७ ॥

गम्यतेयदिमृगेन्द्रमंदिरंलभ्यतेकरिकपोलमौ-
क्तिकम् ॥ जंबुकालयगतेचलभ्यतेवत्सपुच्छ-
खरचर्मखण्डनम् ॥ १८ ॥

दोहा—सिंहभवन यदि जाग कोउ, गज मुक्ता तहँ पाव ॥
वत्सपूछ खरचर्म टुक, स्यार मांद जो पाव ॥१८॥

भा०—यदि कोई सिंहकी गुहामें जापडे तो उसको हाथीके कपोलकी मोती मिलती हैं और सियारके मांदमें जानेपर बछड़ेकीपूंछ और गदहेके चमड़ेका टुकड़ा मिलताहै ॥ १८ ॥

शुनःपुच्छमिवव्यर्थंजीवितंविद्ययाविना ॥
नगुह्यगोपनेशक्तंनचदंशनिवारणे ॥ १९ ॥

दोहा—श्वानपूँछसन जीवनो, विद्याविनुहै व्यर्थ ॥
दंशनिवारण तन ढकन, नहिं एको सामर्थ ॥१९॥

भा०—कुत्तेकेपूंछके समान विद्याविना जीना व्यर्थ है, कुत्तेकी पूंछ गोप्यइन्द्रियको ढांप नहीं सकती है; न मच्छड़ आदि जीवोंको उड़ा सकतीहै ॥ १९ ॥

वाचांशौचंचमनसःसौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥
सर्वभूतदयाशौचमेतच्छौचंपरार्थिनाम् ॥ २० ॥

दोहा–वचन शुद्ध मन शुद्ध औ, इन्द्रिय संयम शुद्ध ॥
भूतदया औ स्वच्छता, पर अर्थिन यह शुद्ध॥२०॥

भा०–वचनकी शुद्धि, मनकी शुद्धि, इन्द्रियोंका संयम, सब जीवों-पर दया और पवित्रता ये परार्थियोंकी शुद्धि है ॥ २० ॥

पुष्पेगंधंतिलेतैलंकाष्ठेऽग्निंपयसिघृतम् ॥
इक्षौगुडंतथादेहेपश्यात्मानंविवेकतः ॥ २१ ॥

दोहा–बाससुमनमहँ तेल तिल, अग्नि काठपै घीव ॥
ऊखहि गुड लिमि देहमें, आतम खलु मति सीव ॥ २१॥

भा०–फूलमें गन्ध, तिलमें तेल, काष्ठमें आग, दूधमें घी, ऊखमें गुड़ जैसे वैसेही देहमें आत्माको विचारसे देखो ॥ २१ ॥

इति सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

अधमाधनमिच्छन्तिधनंमानंचमध्यमाः ॥
उत्तमामानमिच्छंतिमानोहिमहतांधनम् ॥ १ ॥

दोहा–अधम धनहिको चहतहैं, मध्यम मन औ मान ॥
मानै धन है बडेनको, उत्तम चाहै मान ॥ १ ॥

भा०–अधम धनही चाहतेहैं, मध्यम धन और मान, उत्तम मानही चाहतेहैं, इसकारण कि महात्माओंका धन मानहीहै ॥ १ ॥

इक्षूनपःपयोमूलंताम्बूलंफलमौषधम् ॥ भक्षयि-
त्वापि कर्तव्याः स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥ २ ॥

सोरठा–ऊख वारि पय मूल, औषधहूको खायके ।
तथा खाय तांबूल, स्नान दान आदिक उचित ॥ २ ॥

भा०–ऊख, जल, दूध, फल मूल और औषध इन वस्तुओंके भोजन करने परभी स्नान दान आदि क्रिया करना चाहिये ॥ २ ॥

दीपोभक्षयतेध्वांतंकज्जलंचप्रसूयते ॥
यदन्नंभक्ष्यतेनित्यंजायतेतादृशीप्रजा ॥ ३ ॥

दोहा–दीपक तमको खात है, तौ कज्जल उपजाय ॥
अन्न जैसही खाय जो, तैसइ संतति पाय ॥ ३ ॥

भा०–दीप अन्धकारको खाय जाता है और काजलको जन्माता है, जैसा अन्न सदा खाता है उसकी वैसीही सन्तति होतीहै ॥ ३ ॥

वित्तंदेहिगुणान्वितेषुमतिमन्नान्यत्रदेहिकचि-
त्प्राप्तंवारिनिधेर्जलंधनमुखेमाधुर्ययुक्तंसदा ॥
जीवन्स्थावरजंगमांश्चसकलान्संजीव्यभूमण्डलं
भूयःपश्यतिदेवकोटिगुणितंगच्छेत्तमम्भोनिधिम् ४

दोहा–गुणहिन औरहि देइधन, लखिय जलद जलपाय॥
मधुर कोटिगुण करि जगत, जीवन जलनिधि जाय ॥४॥

भा०–हेमतिमान् ! गुणियोंको धन दो, औरोंको कभी मत दो; समुद्रसे मेघके मुखमें प्राप्त होकर जल सदा मधुर होजाता है, पृथ्वी पर चर अचर सब जीवोंको जिलाकर फिर देखो, वही जल कोटि-गुना होकर उसी समुद्रमें चला जाता है ॥ ४ ॥

चांडालानांसहस्रैश्चसूरिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥
एकोहियवनःप्रोक्तोननीचोयवनात्परः ॥ ५ ॥

दोहा–एक सहस चंडाल सम, यवननीच इक होय ॥
तत्त्वदर्शी कह यवनते, नीच और नहिं कोय ॥ ५ ॥

भा०-तत्त्वदर्शियोंने कहा है कि, सहस्रचांडालोंके तुल्य एक यवन होता है और यवनसे नीच दूसरा कोई नहीं है ॥ ५ ॥

+ तैलाभ्यंगेचिताधूमेमैथुनेक्षौरकर्मणि ॥
तावद्भवतिचांडालोयावत्स्नानंनचाचरेत् ॥ ६ ॥

दोहा-चिताधूम तनुतेल लगि, मैथुन क्षौर बनाय ॥
तबलौं है चंडालसम, जबलौं नाहिं नहाय ॥ ६ ॥

भा०-तेल लगानेपर, चिताके धूम लगनेपर, स्त्रीप्रसंग करनेपर, बार बनानेपर, तबतक चाण्डालही बना रहता है जबतक स्नान नहीं करता है ॥ ६ ॥

अजीर्णेभेषजंवारिजीर्णेवारिबलप्रदम् ॥
भोजनेचामृतंवारिभोजनांतेविषप्रदम् ॥ ७ ॥

दोहा-वारि अजीरण औषध, जीरणमें बलदानि ॥
भोजनके संग अमृत है, भोजनान्त विष मानि॥७॥

भा०-अपच होनेपर जल औषध है, पचजानेपर जल बलको देता है, भोजनके समय पानी अमृतके समान है और भोजन के अन्तमें विषका फल देता है ॥ ७ ॥

हतंज्ञानंक्रियाहीनंहतश्चाज्ञानतोनरः ॥
हतंनिर्नायकंसैन्यंस्त्रियोनष्टाह्यभर्तृकाः ॥ ८ ॥

दोहा-ज्ञान क्रियाविन नष्ट है; नर नसु जो अज्ञान ॥
निरनायक नसु सैनहू, त्यों पतिविनु तिय जान॥८॥

भा०-क्रियाके विना ज्ञान व्यर्थ है, अज्ञानसे नर मरासा है, सेनापतिके विना सेना मरी जाती है और स्वामिहीन स्त्री नष्ट होजाती है ॥ ८ ॥

वृद्धकालेमृताभार्यावंधुहस्तगतंधनम् ॥
भोजनंचपराधीनंतिस्रःपुंसांविडम्बनाः ॥ ९ ॥

दोहा–वृद्धसमय जो मरु तिया, बंधुहाथ धन जाय ।
पराधीन भोजन मिलै, यह तीनों दुखदाय ॥ ९ ॥

भा०–बुढापेमें मरी स्त्री, बन्धुके हाथमें गया धन और दूसरेके अधीन भोजन ये तीन पुरुषोंकी विडम्बना हैं अर्थात् दुःखदायक होते हैं ॥ ९ ॥

अग्निहोत्रंविनावेदानचदानंविनाक्रिया ॥
नभावेनविनासिद्धिस्तस्माद्भावोहिकारणम् ॥१०॥

दोहा–अग्निहोत्रबिनु वेद नहिं, नहीं क्रियाबिनु दान ।
भावबिना नहिं सिद्धि है, सबमें भाव प्रधान ॥१०॥

भा०–अग्निहोत्रके विना वेदका पढना व्यर्थ होता है, दानके विना यज्ञादिक क्रिया नहीं बनती, भावके विना कोई सिद्धि नहीं होती, इसहेतु प्रेमही सबका कारण है ॥ १० ॥

काष्ठपाषाणधातूनांकृत्वाभावेनसेवनम् ॥
श्रद्धयाचतथासिद्धिस्तस्यविष्णोःप्रसादतः ॥ ११॥

दोहा–धातुकाठपाषाणको, करु सेवन युतभाव ।
श्रद्धासे भगवत्कृपा, तैसो तेहि सिधि आव ॥११॥

भा०–धातु, काष्ठ, पाषाण, भावसहित सेवनकरना । श्रद्धासे और भगवत्कृपासे जैसा भावहै तैसीही सिद्धि होती है ॥ ११ ॥

नदेवोविद्यतेकाष्ठेनपाषाणेनमृन्मये ॥
भावेहिविद्यतेदेवस्तस्माद्भावोहिकारणम् ॥ १२ ॥

सोरठा–देव न काठ पषान, नहीं माटिहूमें रहै ।
जाने सुघर सुजान, विद्यमान है भावमें ॥ १२ ॥

भा०–देवता काठमें नहीं है, न पाषाणमें है, न मृत्तिकाकी मूर्तिमें है; निश्चयहै कि देवताभावमें विद्यमान है, इसहेतु भावही सबका कारण है ॥ १२ ॥

शांतितुल्यंतपोनास्तिनसंतोषात्परंसुखम् ॥
नतृष्णायाःपरोव्याधिर्नचधर्मोदयासमः ॥ १३ ॥

दोहा–शांतिसम तप और नहिं, सुख संतोषसमान ।
नहिं तृष्णासम व्याधि है, धर्म दयासम आन॥१३॥

भा०–शांतिके समान दूसरा तप नहीं है, न संतोषसे परे सुख, न तृष्णासे दूसरी व्याधि है, न दयासे अधिक धर्म है ॥ १३ ॥

क्रोधोवैवस्वतोराजातृष्णावैतरणीनदी ॥
विद्याकामदुघाधेनुःसंतोषोनन्दनंवनम् ॥ १४ ॥

दोहा–तृष्णा वैतरणी नदी, यमस्वरूप है रोष ।
कामधेनु विद्या अहै, नन्दनवन संतोष ॥ १४ ॥

भा०–क्रोध यमराज है और तृष्णा वैतरणीनदी है, विद्या कामधेनु गाय है और सन्तोष इन्द्रकी वाटिका है ॥ १४ ॥

गुणोभूषयतेरूपंशीलंभूषयतेकुलम् ॥
सिद्धिर्भूषयतेविद्यांभोगोभूषयतेधनम् ॥ १५ ॥

दोहा–रूपहि गुण भूषित कर, कुल करु शील प्रकास ।
विद्याभूषित सिद्धिकरि, धनलहि भोगविलास ॥ १५ ॥

भा०–गुण रूपको भूषित करता है, शील कुलको अलंकृत करता है, सिद्धि विद्याको भूषित करती है. और भोग धनको भूषित करता है ॥ १५ ॥

निर्गुणस्यहतंरूपंदुःशीलस्यहतंकुलम् ॥
असिद्धस्यहताविद्याअभोगेनहतंधनम् ॥ १६ ॥

दोहा–निर्गुणको हत रूप है, हत कुशील कुलमान ।
हत विद्याहू असिधको, हत अभोग धन धान ॥१६॥

भा०–निर्गुणकी सुंदरता व्यर्थ है, शीलहीनका कुल निंदित होता है, सिद्धिके विना विद्या व्यर्थ है, भोगके विना धन व्यर्थ है ॥ १६ ॥

शुद्धंभूमिगतंतोयंशुद्धानारीपतिव्रता ॥
शुचिःक्षेमकरोराजासंतुष्टोब्राह्मणःशुचिः ॥ १७॥

दोहा–शुद्ध भूमिगत वारि है, नारि पतिव्रत जौन।
क्षेम करै सो भूप शुचि, विप्र तोष शुचि तौन ॥१७॥

भा०–भूमिगत जल पवित्र होता है, पतिव्रता स्त्री पवित्र होती है, कल्याण करनेवाला राजा पवित्र गिनाजाता है, ब्राह्मण संतोषी शुद्ध होता है ॥ १७ ॥

असन्तुष्टाद्विजानष्टाःसंतुष्टाश्चमहीभृतः ॥
सलज्जागणिकानष्टानिर्लज्जाश्चकुलांगनाः ॥ १८ ॥

दोहा–असंतुष्ट द्विज नष्टहै, नष्ट तुष्ट नरराज।
नष्ट सलज्जा पातुरी, कुलनारी बिन लाज ॥१८॥

भा०–असंतोषी ब्राह्मण निंदित गिनेजाते हैं और संतोषी राजा, सलज्जा वेश्या और लज्जाहीन कुलस्त्री निंदित गिनीजाती है ॥ १८ ॥

किंकुलेनविशालेनविद्याहीनेनदेहिनाम् ॥
दुष्कुलंचापिविदुषोदेवैरपिसुपूज्यते ॥ १९ ॥

दोहा–विद्याहीन विशालहू, कुल मनुष्य केहिकाज।
दुष्टकुलहु विद्वानको, पूजित देवसमाज ॥ १९ ॥

भा०–विद्याहीन बडे कुलसे मनुष्योंको क्या लाभ है विद्वान्‌का नीचभी कुल देवताओंसे पूजा पाता है ॥ १९ ॥

विद्वान्प्रशस्यतेलोकेविद्वान्सर्वत्रगौरवम् ॥
विद्ययालभतेसर्वंविद्यासर्वत्रपूज्यते ॥ २० ॥

दोहा–विदुष प्रशंसित होत जग, सब थल गौरव पाय।
विद्यासे सब मिलत हैं, थल सब सोइ पुजाय ॥ २० ॥

भा०-संसारमें विद्वान्‌ही प्रशंसित होता है विद्वान्‌ही सब स्थानमें आदर पाता है, विद्याहीसे सब मिलता है, विद्याही सब स्थानमें पूजित होती है ॥ २० ॥

+ रूपयौवनसंपन्नाविशालकुलसंभवाः ॥
विद्याहीनानशोभंतेनिर्गंधाइवकिंशुकाः ॥ २१ ॥

दोहा-छबियौवनसंपन्नहू, जनित कुलहु अनुकूल ।
सोहु न विद्या बिनु रहित, गंध टेसु जिमि फूल॥२१॥

भा०-सुंदर, तरुणतायुत और बड़े कुलमें उत्पन्नभी विद्याहीन पुरुष ऐसे नहीं शोभते जैसे विनागंध पलाशके फूल ॥ २१ ॥

+ मांसभक्षैःसुरापानैर्मूर्खैश्चाक्षरवर्जितैः ॥
पशुभिःपुरुषाकारैर्भाराक्रांतास्तिमेदिनी ॥ २२ ॥

दोहा-मासभक्ष मदिरापियत, मूरख अक्षरहीन ।
नराकार पशु भार यह, पृथिवी नहिं सहु तीन ॥२२॥

+ भा०--मांसके भक्षण और मदिरापान करनेवाले, निरक्षर और मूर्ख इन पुरुषाकार पशुओंके भारसे पृथ्वी पीडित रहती है ॥ २२ ॥

अन्नहीनोदहेद्राष्ट्रंमंत्रहीनश्चऋत्विजः ॥
यजमानंदानहीनोनास्तियज्ञसमोरिपुः ॥ २३ ॥

दोहा-अन्नहीन राज्यहि दहत, दानहीन यजमान ।
मन्त्रहीन ऋत्विजन कहँ, ऋतुसम रिपु नहिं आन ॥२३॥

भा०-यज्ञ यदि अन्नहीन हो तो राज्यको, मंत्रहीनहो तो ऋत्विजोंको, दानहीन हो तो यजमानको जलाता है; इसकारण यज्ञके समान कोईभी शत्रु नहीं है ॥ २३ ॥

इति वृद्धचाणक्याऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

मुक्तिमिच्छसिचेत्तातविषयान्विषवत्त्यज ॥
क्षमार्जवदयाशौचंसत्यंपीयूषवत्पिब ॥ १ ॥

सोरठा-मुक्ति चहौ जो तात, विषयनको तजु विषसरिस ।
दया शील सच बात, शौच सरलता क्षमा गहु ॥ १ ॥

भा०-हे भाई ! यदि मुक्ति चाहते हो तो विषयोंको विषके समान छोड दो । सहनशीलता, सरलता, दया, पवित्रता और सचाईको अमृतकी नाई पिओ ॥ १ ॥

परस्परस्यमर्माणियेभाषंतेनराधमाः ॥
तएवविलयंयांतिवल्मीकोदरसर्पवत् ॥ २ ॥

दोहा-जौन अधम नर भाषते, मर्म परस्पर आप ।
ते विलाय जैहैं यथा, मधि बिमवटको साँप ॥ २॥

भा०-जो नराधम परस्पर अंतरात्माके दुःखदायक वचनको भाषण करते हैं वे निश्चयकरिकै नष्ट होजाते हैं. जैसे बिमौटमें पडकर साँप॥२॥

गंधःसुवर्णेफलमिक्षुदंडेनाकारिपुष्पंखलुचंदनस्य॥ +
विद्वान्धनीभूपतिर्दीर्घजीवीधातुःपुराकोऽपिनबु-
द्धिदोऽभूत् ॥ ३ ॥

दोहा-गन्ध सोन फल इक्षु धन, बुध चिरायु नरनाह ।
सुमनमलय धाता न किय, लहु ज्ञाता गुरु नाह ॥३॥

भा०-सुवर्णमें गन्ध, ऊखमें फल, चन्दनमें फूल, विद्वान् धनी और राजा चिरंजीवी न किया इससे निश्चय है कि, विधाताको पहिले कोई बुद्धिदाता न था ॥ ३ ॥

सर्वौषधीनाममृताप्रधानासर्वेषुसौख्येष्वशनंप्रधानम् ॥
सर्वेंद्रियाणांनयनंप्रधानंसर्वेषुगात्रेषुशिरःप्रधानम् ॥४॥

दोहा-गुरच औषधिन सुखनमें, भोजन कह्यो प्रधान ।
चख इंद्रिन सब अंगमें, शिर प्रधान तिमि जान ॥ ४ ॥

भा०-सब औषधियोंमें गुरुच गिलोय प्रधानहै; सब सुखोंमें भोजन श्रेष्ठ है; सब इन्द्रियोंमें आँख उत्तम है; सब अंगोंमें शिर श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

दूतोनसंचरतिखेनचलेच्चवार्तापूर्वंनजल्पितमिदं-
नचसंगमोऽस्ति ॥ व्योम्निस्थितंरविशशिग्रह-
णंप्रशस्तंजानातियोद्विजवरःसकथंनविद्वान् ॥ ५ ॥

दोहा-दूत वचन गति संग नहिं, नभ न आदि कहु कोय॥
शशिरविग्रहण बखानु जो, द्विज न विदुष किमि होय ५

भा०-आकाशमें दूत नहीं जासक्ता, न वार्ताकी चर्चा चलसक्ती, न पहिलेहीसे किसीने कहिरक्खा है और न किसीसे संगम हो सक्ता, ऐसी दशामें आकाशमें स्थित सूर्य चन्द्रके ग्रहणको जो द्विजवर स्पष्ट जानता है वह कैसे विद्वान् नहीं है ? ॥ ५ ॥

विद्यार्थीसेवकःपांथःक्षुधार्तोभयकातरः ॥
भांडारीप्रतिहारश्चसप्तसुप्तान्प्रबोधयेत् ॥ ६ ॥

दोहा-द्वारपाल सेवक पथिक, समय क्षुधारत पाय ।
भांडारी विद्यारथी, सोवत सात जगाय ॥ ६ ॥

भा०-विद्यार्थी, सेवक, पथिक, भूँखसे पीडित, भयसे कातर, भांडारी और द्वारपाल ये सात यदि सोते हों तो जगादेना चाहिये ॥६॥

अहिंनृपंचशार्दूलंकिटिंचबालकंतथा ॥
परश्वानंचमूर्खंचसप्तसुप्तान्नबोधयेत् ॥ ७ ॥

दोहा-भूपति मृगपति मूढमति, त्यों बर्रै औ बाल ।
सोवत सात जगाइये, नहिं पर कूकुर व्याल ॥ ७ ॥

भा०-साँप, राजा, व्याघ्र, बरैं वैसेही बालक दूसरेका कुत्ता और मूर्ख ये सात सोते हों तो नहीं जगाना चाहिये ॥ ७ ॥

अर्थाधीताश्चयैर्वेदास्तथाशूद्रान्नभोजिनः ॥
तेद्विजाःकिंकरिष्यंतिनिर्विषाइवपन्नगाः ॥ ८॥

दोहा-अर्थहेतु वेदहि पढैं, खाय शूद्रको धान॥
ते द्विज क्या कर सकतहैं. विन विष व्यालसमान ॥ ८॥

भा०-जिन्होंने धनकेअर्थ वेदकोपढा, वैसेही जो शूद्रकाअन्न भोजन करतेहैं वे ब्राह्मण विषहीन सर्पके समान क्या करसक्तेहैं ?॥ ८ ॥

यस्मिन्रुष्टेभयंनास्तितुष्टेनैवधनागमः ॥
निग्रहोऽनुग्रहोनास्तिसरुष्टः किंकरिष्यति ॥ ९ ॥

दोहा-रुष्ट भये भय तुष्टने, नहीं धनागम होय ॥
दंड सहाय न करिसकै, का रिसाय करु सोय॥९॥

भा०-जिसके क्रुद्ध होनेपर न भयहै, प्रसन्न होनेपर न धनकालाभ न दंड वा अनुग्रह होसकताहै वह रुष्ट होकर क्या करेगा? ॥ ९ ॥

निर्विषेणापिसर्पेणकर्तव्यामहतीफणा॥
विषमस्तुनचाप्यस्तुफटाटोपोभयंकरः ॥ १० ॥

दोहा-बिनाविषहूके साँपको, चाहिय फनै बढाय ॥
होउ नहीं वा होउ विष; फटाटोप भय दाय ॥१०॥

भा०-विषहीन साँपकोभी अपनी फणा बढाना चाहिये, इसकारण कि, विषहो वा न हो आडंबर भयजनक होताहै ॥ १० ॥

प्रातर्द्यूतप्रसंगेनमध्याह्नेस्त्रीप्रसंगतः ॥
रात्रौचौरप्रसंगेनकालोगच्छतिधीमताम् ॥ ११ ॥

दोहा-प्रातः द्यूत प्रसंगसे, मध्य स्त्री परसंग ॥
सायं चोर प्रसंग कह, काल गहे तब अंग ॥ ११ ॥

भा०-प्रातःकालमें जुआडियोंकी कथासे अर्थात् महाभारतसे, मध्याह्नमें स्त्रीके प्रसंगसे अर्थात् रामायणसे रात्रीमें चोरकी वार्त्तासे अर्थात्

भागवतसे बुद्धिमानोका समय बीतताहै। तात्पर्य यह कि, महाभारतके सुननेसे यह निश्चय होजाता है कि, जुआ, और कलह छलका घरहै, इसलोक और परलोकमें उपकार करनेवाले कामोंको महाभारतमें लिखी हुई रीतियोंसे करनेपर उन कामोंका पूरा फल होता है; इसकारण बुद्धिमान् लोग प्रातःकालही महाभारतको सुनतेहैं जिससे दिनभर उसी रीतिसे काम करते जायँ. रामायण सुननेसे स्पष्ट उदाहरण मिलताहै कि, स्त्रीके वश होनेसे अत्यन्त दुःख होताहै और परस्त्रीपर दृष्टि देनेसे पुत्र कलत्र जड़मूडके साथ पुरुषका नाश होजाता है; इसहेतु मध्याह्नमें अच्छे लोग रामायणको सुनते हैं प्रायः रात्रिमें लोग इंद्रियोंके वश होजातेहैं और इन्द्रियोंका यह स्वभावहै कि मनको अपने अपने विषयोंमें लगाकर जीवको विषयोंमें लगादेती हैं; इसीहेतुसे इन्द्रियोंको आत्माहारीभी कहते हैं। और जो लोग रातको भागवत सुनते हैं वे कृष्णके चारित्रको स्मरण करके इन्द्रियोंके वश नहीं होते, क्योंकि सोलह हजारसे अधिक स्त्रियों के रहते भी कृष्णचन्द्र इन्द्रियोंके वश न हुए और इंद्रियोंके संयमकी रीति भी जानजाते हैं ॥ ११ ॥

स्वहस्तग्रथितामालास्वहस्तघृष्टचन्दनम् ॥
स्वहस्तलिखितंस्तोत्रंशक्रस्यापिश्रियंहरेत् ॥१२॥

दोहा–सुमनमालनिजकररचित, स्वलिखितपुस्तकपाठ।
धन इन्द्रहु नाशै दिये, स्वघसित चंदन काठ ॥१२॥

भा०–अपने हाथसे गुथी माला, अपने हाथसे घिसा चंदन अपने हाथसे लिखा स्तोत्र ये इन्द्रकीभी लक्ष्मीको हरलेतेहैं ॥ १२ ॥

इक्षुदंडास्तिलाःशूद्राःकांताहेमचमेदिनी ॥
चंदनंदधितांबूलंमर्दनंगुणवर्धनम् ॥ १३ ॥

दोहा–ऊख शूद्र दधि नायका, हेम मेदिनी पान ॥
तिल चन्दन इन नवनको, मर्दनही गुणजान ॥१३॥

भा०—ऊख, तिल, शूद्र, कांता, सोना, पृथिवी, चन्दन, दही और पान इनका मर्दन गुणवर्द्धन है ॥ १३ ॥

दरिद्रताधीरतयाविराजतेकुवस्त्रताशुभ्रतयाविराजते ॥ कदन्नताचोष्णतयाविराजतेकुरूपता शीलयुताविराजते ॥ १४ ॥

दोहा—दारिद सोहत धीरते, कुपट शुभ्रता पाय ।
लहि कुअन्न उष्णत्वको, शीलकुरूप सुहाय ॥ १४ ॥

भा०—दरिद्रता भी धीरतासे शोभती है, स्वच्छतासे कुवस्त्र सुंदर जानपडता है, कुअन्नभी उष्णतासे मीठा लगता है, कुरूपताभी सुशील होतो शोभती है ॥ १४ ॥

इति वृद्धचाणक्ये नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ वृद्धचाणक्योत्तरार्द्धम् ।

दशमोऽध्यायः १०.

धनहीनोनहीनश्चधनिकःससुनिश्चयः ॥
विद्यारत्नेनयोहीनःसहीनःसर्ववस्तुषु ॥ १ ॥

दोहा—हीन नहीं धनहीन है, निश्चय सो धनमान ।
विद्यारत्न विहीन जो, सकल हीन तेहि जान ॥ १ ॥

भा०—धनहीन हीन नहीं गिना जाता. निश्चय है कि, वह धनीही है, विद्यारत्नसे जो हीन है वह सब वस्तुओंमें हीन है ॥ १ ॥

दृष्टिपूतंन्यसेत्पादंवस्त्रपूतंपिबेज्जलम् ॥
शास्त्रपूतंवदेद्वाक्यंमनःपूतंसमाचरेत् ॥ २ ॥

दोहा—दृष्टि शोधि पग धरिय मग, पीजिय जलपटशोधि।
शास्त्रशोधि बोलिय वचन, करिय काज मन शोधि ॥ २ ॥

भा०-दृष्टिसे शोधकर पाँव रखना उचित है, वस्त्रसे शुद्धकर जल पीवे, शास्त्रसे शुद्धकर वाक्य बोले और मनसे सोचकर कार्य करना चाहिये ॥ २ ॥

सुखार्थीचेत्त्यजेद्विद्यांविद्यार्थीचेत्त्यजेत्सुखम् ॥
सुखार्थिनःकुतोविद्यासुखंविद्यार्थिनः कुतः ॥ ३ ॥

दोहा-सुख चाहै विद्या तजै, सुख ताजि विद्या चाह ।
सुख अर्थिहि विद्या कहां, विद्यार्थिहि सुख काह ॥ ३ ॥

भा०-यदि सुख चाहै तो विद्याको छोड दे, यदि विद्या चाहै तो सुखका त्याग करै, सुखार्थीको विद्या और विद्यार्थीको सुख कैसे होगा ॥ ३ ॥

कवयःकिंनपश्यंतिकिन्नकुर्वंतियोषितः ॥
मद्यपाःकिंनजल्पंतिकिंनखादंतिवायसाः ॥ ४ ॥

दोहा-काह न जानैं सुकवि जन, करैं काह नाहिं नारि ।
मद्यपि काह न बकिसकैं, काग खाहिं केहि बारि ॥ ४ ॥

भा०-कवि क्या नहीं देखते, स्त्री क्या नहीं करसक्ती, मद्यपी क्या नहीं बकते और कौवे क्या नहीं खाते ॥ ४ ॥

रंकंकरोतिराजानंराजानंरंकमेवच ॥
धनिनंनिर्धनंचैवनिर्धनंधनिनंविधिः ॥ ५ ॥

स०-बनवै अति रंकन भूमिपती, अरु भूमिपतीनहुं रंक अती । धनिको धनहीन फिरै करती, अधनीन धनी विधि केरि गती ॥ ५ ॥

भा०-निश्चय है कि, विधि रंकको राजा, राजाको रंक, धनीको निर्धन और निर्धनको धनी करदेता है ॥ ५ ॥

लुब्धानांयाचकःशत्रुर्मूर्खाणांबोधकोरिपुः ॥
जारस्त्रीणांपतिःशत्रुश्चौराणांचंद्रमारिपुः ॥ ६ ॥

दोहा–याचक रिपु लोभीनके, मूढनि जो शिख दानि ।
जार तियन अरि पति कह्यो, चोरन शशि रिपु जानि ॥६॥

भा०–लोभियोंको याचक और मूर्खोंको समझानेवाला और पुंश्चली स्त्रियोंको पति और चोरोंको चन्द्रमा शत्रु है ॥ ६ ॥

येषांनविद्यानतपोनदानंनचापिशीलंनगुणोनधर्मः ॥ तेमृत्युलोकेभुविभारभूतामनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥ ७॥

दोहा–धर्म शील गुण नाहिं जेहि, नहिं विद्या तप दान ।
मनुजरूप भुवि भार तेहि, विचरत मृगकरि जान॥७॥

भा०–जिन लोगोंमें न विद्या है, न तप है, न दान है, न शील है न गुण है और न धर्म है वे संसारमें पृथ्वीपर भाररूप होकर मनुष्यरूपसे मृगसे फिर रहेहैं ॥ ७ ॥

अंतःसारविहीनानामुपदेशोनजायते ॥
मलयाचलसंसर्गान्नवेणुश्चंदनायते ॥ ८ ॥

सोरठा–शून्य हृदय उपदेश, नाहिं लगै कैसो करिय ।
बसै मलयागिरिदेश, तऊ बाँसमें वास नहिं ॥ ८ ॥

भा०–गंभीरताविहीन पुरुषोंको शिक्षादेना सार्थक नहीं होता, मलयाचलके संगसे बाँस चन्दन नहीं होता ॥ ८ ॥

यस्यनास्तिस्वयंप्रज्ञाशास्त्रंतस्यकरोतिकिम् ॥
लोचनाभ्यांविहीनस्यदर्पणःकिंकरिष्यति ॥ ९ ॥

दोहा–स्वाभाविकनहिं बुद्धि जेहि, ताहि शास्त्र करु काह
जो नर नयन विहीनहै, दर्पणसे का ताह ॥ ९ ॥

भा०–जिसको स्वाभाविक बुद्धि नहीं है उसको शास्त्र क्या करसक्ता है और आँखोंसे हीनको दर्पण क्या करेगा ॥ ९ ॥

दुर्जनंसज्जनंकर्तुमुपायोनहिभूतले ॥
अपानंशतधाधौतंनश्रेष्ठमिन्द्रियंभवेत् ॥ १० ॥

दोहा-दुर्जन सज्जन करनकी, भूतल नहीं उपाय ।
है अपान शुचि इन्द्रि नहिं, सौसौ धोयो जाय॥१०॥

भा०-दुर्जनको सज्जन करनेके लिये पृथ्वीतलमें कोई उपाय नहीं है, मलका त्याग करनेवाली इन्द्रिय सौवारभी धोईजाय तोभी श्रेष्ठ इन्द्रिय न होगी ॥ १० ॥

आप्तद्वेषाद्भवेन्मृत्युःपरद्वेषाद्धनक्षयः ॥
राजद्वेषाद्भवेन्नाशोब्रह्मद्वेषात्कुलक्षयः ॥ ११ ॥

दोहा-सतविरोधते मृत्यु मिलु, धनक्षय करि अरि द्वेष ।
राजद्वेषते नशत है, कुलक्षय अरु द्विज द्वेष ॥ ११ ॥

भा०-बडोंके द्वेषसे मृत्यु, शत्रुके विरोध करनेसे धनका क्षय होता है, राजाके द्वेषसे नाश और ब्राह्मणके द्वेषसे कुलका क्षय होता है॥११॥

वरंवनेव्याघ्रगजेंद्रसेवितद्रुमालयेपत्रफलांबुसेव-
नम् ॥ तृणेषुशय्याशतजीर्णवल्कलंनबंधुमध्ये
धनहीनजीवनम् ॥ १२ ॥

छंद-गज बाघ सेवित वृक्ष घर बन माहिं बरु रहिबो करै ।
अरु पत्र फल जल सेवनो तृणसेज बरु लहिबो करै ॥
शतछिद्र वल्कल वस्त्रकरि बरु चाल यह गहिबो करै ।
निजबंधुमहँ धनहीन है नहिं जीवनो चहिबो करै १२

भा०-वनमें बाघ और बडे २ हाथियोंसे सेवित वृक्षके नीचेके पत्ता फल खाना वा जलका पीना, घासपर सोना, सौटुकडेके वल्कलोंको पहिनना ये श्रेष्ठ हैं; पर बन्धुओंके मध्यमें धनहीनका जीना श्रेष्ठ नहीं है ॥ १२ ॥

विप्रोवृक्षस्तस्यमूलंचसंध्यावेदाःशाखाधर्मकर्मा-
णिपत्रम् ॥ तस्मान्मूलंयत्नतोरक्षणीयंछिन्नेमूले
नैवशाखानपत्रम् ॥ १३ ॥

छंद-विप्र वृक्षहै मूल संध्या वेद शाखा जानिये।
धर्म कर्म हैं पत्र दोऊ मूलको नहिं नाशिये॥
जो नष्टमूल ह्वै जायतो कुछ शाख पातन फूटिये।
यही नीति सुनीति है की मूलरक्षा कीजिये॥१३॥

भा०-ब्राह्मण वृक्ष है, उसकी जड संध्या है, वेद शाखा है और धर्म पत्ते हैं। इसकारण प्रयत्न करके जडकी रक्षा करनी चाहिये जड कटजानेपर न शाखा रहेगी और न पत्ते॥ १३॥

माताचकमलादेवीपितादेवोजनार्दनः॥
बांधवाविष्णुभक्ताश्चस्वदेशोभुवनत्रयम्॥ १४॥

दोहा-लक्ष्मीदेवी मातुहै, पिता विष्णु सर्वेश।
कृष्णभक्त बंधू सभी, तीन भुवन निज देश॥१४॥

भा०-जिसकी लक्ष्मी माता है और विष्णु भगवान् पिता है, और विष्णुके भक्त बांधव हैं उसको तीनोंलोक स्वदेशही हैं॥१४॥

एकवृक्षसमारूढानानावर्णाविहंगमाः॥
प्रभातेदिक्षुदशसुयांतिकापरिदेवना॥ १५॥

दोहा-बहुविधि पक्षी एक तरु, जो बैठें निशि आय।
भोर दशौदिशि उडि चले,वह कोही पछिताय॥१५॥

भा०-नानाप्रकारके पखेरू एक वृक्षपर बैठते हैं प्रभात समय दशों दिशामें होजाते हैं उसमें क्या शोच है॥ १५॥

बुद्धिर्यस्यबलंतस्यनिर्बुद्धेश्चकुतोबलम्॥
वनेसिंहोमदोन्मत्तोजंबुकेननिपातितः॥ १६॥

दोहा-बुद्धि जासु है सो बली, निर्बुधिके बल नाहिं।
अतिबल सिंहहि स्यार लघु,चतुर हतेसि वनमाहिं १६

भा०-जिसको बुद्धि है उसीको बल है, निर्बुद्धिको बल कहांसे होगा, देखो वनमें मदसे उन्मत्त सिंह सियारसे मारागया॥ १६॥

काचिंतामम जीवने यदिहरिर्विश्वंभरोगीयते
नोचेदर्भकजीवनायजननीस्तन्यंकथंनिःसरेत् ॥
इत्यालोच्यमुहुर्मुहुर्यदुपतेलक्ष्मीपतेकेवलं
त्वत्पादांबुजसेवनेनसततंकालोमयानीयते ॥ १७॥

छंद--हैनामहरीकोजगपालकमनजीवनशंकाक्योंकरनी ।
नहींतोबालकजीवनकोतनुसेपयनिसरतक्योंजननी ॥
यही जानकर बार बार हे यदुपति लक्ष्मीपति तेरे ।
चरणकमलके सेवनसे दिन बीते जायँ सदा मेरे ॥१७॥

भा०–मेरे जीवनमें क्या चिंता है यदि हरि विश्वका पालनेवाला कहलाताहै; ऐसा न हो तो बच्चेके जीनेके हेतु माताके स्तनमें दूध कैसे बनाते, इसको बारबार विचार करके हे यदुपति ! हे लक्ष्मी पति ! सदा केवल आपके चरणकमलकी सेवासे मैं समयको बिताताहूँ ॥ १७ ॥

गीर्वाणवाणीषुविशिष्टबुद्धिस्तथापिभाषांतरलो-
लुपोहम् ॥ यथासुराणाममृतेचसेवितेस्वर्गांग-
नानामधरासवेरुचिः ॥ १८ ॥

सोरठा–देववैन बुधि बेस, तऊ और भाषा चहौं ।
यदपि सुधा सुर देस, चहैं अपसरन अधररस ॥१८॥

भा०–यद्यपि संस्कृत भाषामेंही विशेष ज्ञान है तथापि दूसरी भाषाकाभी मैं लोभी हूं, जैसे अमृतके रहतेभी देवताओंकी इच्छा स्वर्गकी स्त्रियोंके ओष्ठके आसवमें रहती है ॥ १८ ॥

अन्नाद्दशगुणंपिष्टंपिष्टाद्दशगुणंपयः ॥
पयसोऽष्टगुणंमांसंमांसाद्दशगुणंघृतम् ॥ १९ ॥

दोहा–चून दशगुणो अन्नते, ता दशगुण पय जान ।
पयसे अठगुण मांस है, तेहि दशगुण घृत मान ॥१९॥

भा०-चावलसे दशगुणा पिसान (चून) में गुण है; पिसानसे दशगुणा दूधमें, दूधसे अठगुणा माँसमें, माँससे दशगुणा घीमें॥१९॥

शाकेनरोगावर्द्धंतेपयसावर्धतेतनुः ॥
घृतेनवर्धतेवीर्यंमांसान्मांसंप्रवर्धते ॥ २० ॥

दोहा-रोग बढत है शाकते, पयते बढत शरीर ।
घृतखाये वीरज बढै, मांस मांस गंभीर ॥ २० ॥

भा०-शाकसे रोग, दूधसे शरीर, घीसे वीर्य और मांससे मांस बढता है ॥ २० ॥

इति वृद्धचाणक्ये दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

दातृत्वंप्रियवक्तृत्वंधीरत्वमुचितज्ञता ॥
अभ्यासेननलभ्यन्तेचत्वारःसहजागुणाः ॥ १ ॥

दोहा-दानशक्ति प्रियबोलिबो, धीरज उचित विचार ।
ये गुणसीखे ना मिलैं, स्वाभाविक हैं चार ॥ १ ॥

भा०-उदारता, प्रिय बोलना, धीरता और उचितका ज्ञान ये अभ्याससे नहीं मिलते, ये चारों स्वभाविक गुण हैं ॥ १ ॥

आत्मवर्गंपरित्यज्यपरवर्गंसमाश्रयेत् ॥
स्वयमेवलयंयातियथाराज्यमधर्मतः ॥ २ ॥

दोहा-वर्ग आपनो छोडिके, गहै वर्ग जो आन ।
सोआपुइ नशि जात है, राज्य अधर्म समान॥२॥

भा०-जो अपनी मण्डलीकोछोड परके वर्गका आश्रय लेताहै वह आपही लयको प्राप्त होजाताहै, जैसे राजाके अधर्मसे राज्य ॥ २ ॥

हस्तीस्थूलतनुःसचांकुशवशःकिंहस्तिमात्रोंऽ
कुशोदीपेप्रज्वलितेप्रणश्यतितमःकिंदीपमात्रं
तमः ॥ वज्रेणापिहताःपतन्तिगिरयःकिंवज्रमा
त्रानगास्तेजोयस्यविराजतेसबलवान्स्थूलेषुकः
प्रत्ययः ॥ ३ ॥

स०-भारिकरीरहैअंकुशकेवशकावहअंकुशभारीकरीसों।
त्योंसमपुंजहिनाशतदीपसोंदीपकहूंअँधियारसरीसों ॥
वज्रकेमारेगिरैगिरिहूंकहूंहोयभलावहवज्रगिरीसों,
तेजहैजासुसोईबलबान्कहाविशवासशरीरबरीसों॥३॥

भा०-हाथीका स्थूल शरीर है वहभी अंकुशके वश रहता है, तो क्या हस्तीके समान अंकुश है ? दीपके जलनेपर अंधकार आपही नष्ट होजाता है, तो क्या दीपके तुल्य तम है ? बिजुलीके मारे पर्वत गिरजाते हैं, तो क्या बिजुली पर्वतके समान है ? जिसमें तेज विराजमान रहता है वह बलवान् गिना जाता है मोटेका कौन विश्वास है ॥ ३ ॥

कलौदशसहस्राणिविष्णुस्तिष्ठतिमेदिनीम् ॥
तदर्द्धंजाह्नवीतोयं तदर्द्धंग्रामदेवताः ॥ ४ ॥

दोहा-दशहजार बीते बरस,कलिमें तजि हरि देहि ॥
तासु अर्द्ध सुरनदीजल, ग्रामदेव अधि तेहि ॥४॥

भा०-कलियुगमें दशसहस्र वर्षकेबीतनेपर विष्णु पृथ्वीको छोड देते हैं उसके आधेपर गंगाजी जलको, तिसके आधेके बीतनेपर ग्रामदेवता ग्रामको ॥ ४ ॥

गृहासक्तस्यनोविद्यानोदयामांसभोजिनः ॥
द्रव्यलुब्धस्यनोसत्यंस्त्रैणस्यनपवित्रता ॥ ५ ॥

दोहा–विद्या गृह आसक्तको, दया मांस जे खाहिं ।
लुब्धहि सतता होत नहिं, जारहि शुचिता नाहिं ॥ ५ ॥

भा०–गृहमें आसक्त पुरुषोंको विद्या, मांसके आहारीको दया, द्रव्यके लोभीको सत्यता और व्यभिचारीको पवित्रता नहीं होती॥५॥

नदुर्जनःसाधुदशामुपैतिबहुप्रकारैरपिशिक्ष्यमाणः ॥
आमूलसिक्तःपयसाघृतेननर्निबवृक्षोमधुरत्वमेति ॥६॥

दोहा–साधु दशाको नहिं लहैं, दुर्जन बहु शिख पाय ।
दूध घीवसे सींचिये, नींब न तदपि मिठाय ॥६॥

भा०–निश्चय है कि, दुर्जन अनेक प्रकारसे सिखलायाभी जाय, पर उसमें साधुता नहीं आती, दूध और घीसे मूलसे पालोपर्यंत नींबका वृक्ष सींचाभी जाय पर उसमें मधुरता नहीं आती ॥ ६ ॥

अन्तर्गतमलोदुष्टस्तीर्थस्नानशतैरपि ॥
नशुध्यातियथाभांडंसुरायादाहितंचतत् ॥ ७ ॥

दोहा–मनमलीन खल तीर्थमें, यदि सौबार नहाहि ।
होय शुद्ध नहिं जिमि सुरा, बासन दीनहु दाहि ॥ ७ ॥

भा०–जिसके हृदयमें पाप है वही दुष्ट है; वह तीर्थमें सौबार स्नानसेभी शुद्ध नहीं होता, जैसे मदिराका पात्र जलायाभी जाय तौभी शुद्ध नहीं होता ॥ ७ ॥

नवेत्तियोयस्यगुणप्रकर्षं सतंसदानिन्दतिनात्र
चित्रम् ॥ यथाकिरातीकरिकुंभलब्धांमुक्तांपरि
त्यज्यबिभर्तिगुंजाम् ॥ ८ ॥

चा०छं०–जो न जानु उत्तमत्व जाहिके गुणानकी ।
निन्दतो सो ताहितो अचर्ज कौन खानकी ॥
ज्यों किराति हाथिसाथ मोतियां विहायकै ।
घूँघची पहीनती विभूषणै बनायकै ॥ ८ ॥

भा०–जो जिसके गुणकी प्रकर्षता नहीं जानता वह निरंतर उसकी निंदा करता है, जैसे भिल्लिनी हाथीके मस्तकके मोतीको छोड घुँघुचीको पहिनती हैं ॥ ८ ॥

येतुसंवत्सरंपूर्णंनित्यंमौनेनभुंजते ॥
युगकोटिसहस्रंतेपूज्यंतेस्वर्गविष्टपे ॥ ९ ॥

दोहा–जो पूरे इकवरसभर, मौनधारनित खात ।
युगकोटिनके सहसतक, स्वर्ग माहिं पुजि जात ॥ ९ ॥

भा०–जो वर्षभर नित्य चुपचाप भोजन करता है वह सहस्र-कोटि युगलौं स्वर्गलोकमें पूजा जाता है ॥ ९ ॥

कामक्रोधौतथालोभंस्वादुशृंगारकौतुके ॥
अतिनिद्रातिसेवेचविद्यार्थीह्यष्टवर्जयेत् ॥ १० ॥

सोरठा–काम क्रोध अरु स्वाद, लोभ शृँगारहि कौतुकहि ॥
अतिसेवा निद्रा आद, विद्यार्थी आठौ तजै ॥१०॥

भा०–काम, क्रोध; लोभ, मीठी वस्तु, शृंगार, खेल, अतिनिद्रा और अतिसेवा इन आठोंको विद्यार्थी छोड देवे ॥ १० ॥

अकृष्टफलमूलानिवनवासरतिः सदा ॥
कुरुतेऽहरहःश्राद्धमृषिर्विप्रःसउच्यते ॥ ११ ॥

दोहा–विनु जोते महि मूल फल, खाय रहै वनमाहिं ।
श्राद्ध करै जो प्रतिदिवस, कहिय विप्र ऋषि ताहिं ॥११॥

भा०–विना जोतीभूमिसे उत्पन्न फल वा मूलको खाकर सदा वनवास करता हो और प्रतिदिन श्राद्ध करे ऐसा ब्राह्मण ऋषि कहलाता है ॥ ११ ॥

एकाहारेणसंतुष्टःषट्कर्मनिरतःसदा ॥
ऋतुकालाभिगामीचसविप्रोद्विजउच्यते ॥ १२ ॥

सोरठा-एकैबार अहार, तुष्ट सदा षट्कर्मरत ॥
ऋतुमें प्रियाविहार, करै विप्र सो द्विज अहै ॥१२॥

भा०-एकसमयके भोजनसे संतुष्ट रहकर पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञकरना, कराना, दान देना और लेना इन छः कर्मोंमें सदा रहतहो और ऋतु कालमें स्त्रीका संग करै तौ ऐसे ब्राह्मणको द्विज कहते हैं ॥ १२ ॥

लौकिकेकर्मणिरतः पशूनांपरिपालकः ॥
वाणिज्यकृषिकर्मायःसविप्रोवैश्यउच्यते ॥ १३ ॥

सो०-निरत लोकके कर्म, पशुपालै वानिज करै ।
खेतीमें मन पर्म, करै विप्र सो वैश्य है ॥ १३ ॥

भा०-संसारिक कर्ममें रत हो और पशुओंका पालन, बनियाई और खेती करनेवाला हो वह विप्र वैश्य कहलाताहै ॥ १३ ॥

लाक्षादितैलनीलीनांकौसुंभमधुसर्पिषाम् ॥
विक्रेतामद्यमांसानांसविप्रःशूद्रउच्यते ॥ १४ ॥

सो०-लाखआदि मद मांसु, घीव कुसुम अरु नीलमधु
तेल बेंचियत तासु, शूद्र जानिये विप्र यदि ॥१४॥

भा०-लाख आदि पदार्थ, तेल, नीली, कुसुम, मधु, घी, मद्य, और मास जो इनको बेचनेवाला वह ब्राह्मण शूद्र कहाजाता है॥१४॥

परकार्यविहंताचदांभिकःस्वार्थसाधकः ॥
छलीद्वेषीमृदुःक्रूरोविप्रोमार्जारउच्यते ॥ १५ ॥

सोरठा-दंभी स्वारथशूर, परकारजघालै छली ।
द्वेषी कोमल क्रूर, विप्र बिलार कहावतो ॥ १५॥

भा०-दूसरेके कामका बिगाडनेवाला, दम्भी, अपनेही अर्थका साधनेवाला, छली, द्वेषी, ऊपर मृदु और अन्तःकरणमें कड़ाहो तौ वह ब्राह्मण बिलार कहाजाता है ॥ १५ ॥

वापीकूपतडागानामारामसुरवेश्मनाम् ॥
उच्छेदनेनिराशंकःसविप्रोम्लेच्छउच्यते ॥ १६ ॥

सोरठा–कूप बावली बाग, औ तडाग सुरमन्दिरहि ।
नाशैमें भय त्याग, मलिछ कहावै विप्र सो॥१६॥

भा०–बावली, कुँआ, तालाब, वाटिका, देवालय, इसके उच्छेद करनेमें जो निडर हो वह ब्राह्मण म्लेच्छ कहलाताहै ॥ १६ ॥

देवद्रव्यंगुरुद्रव्यंपरदाराभिमर्शनम् ॥
निर्वाहःसर्वभूतेषुविप्रश्चाण्डालउच्यते ॥ १७ ॥

सोरठा–परनारीरत जोय, जो सुर गुरुधनको हरै ।
द्विज चंडालसो होय, सबमें करु निर्वाह जो॥१७॥

भा०–देवताका द्रव्य और गुरुकाद्रव्य जो हरताहै और परस्त्रीसे संग करताहै और सब प्राणियोंमें निर्वाह करलेताहै वह विप्र चांडाल कहलाताहै ॥ १७ ॥

+ देयंभोज्यधनंधनंसुकृतिभिर्नोसंचयस्तस्यवै
श्रीकर्णस्यबलेश्चविक्रमपतेरद्यापिकीर्तिःस्थिता ॥
अस्माकंमधुदानभोगरहितंनष्टंचिरात्संचितं
निर्वाणादितिनैजपादयुगलंघर्षंत्यहोमाक्षिकाः॥१८॥

स०–मतिमानकोचाहियेकीधनभोजनसंचहिनाहिंदियोईकरै ।
यहितेबलिविक्रमकर्णहुकीरतिआजुलौलोगकह्योईकरै
चिरसंचिमधू हमलोगनकीविनुभोगेदियेनसिबाईकरै ।
यहजानिभयेमधुनाशदोऊमधुमाखियाँपांवघिसोईकरै

भा०–सुकृतियोंको चाहिये कि, भोगयोग्य धनको और द्रव्यको देवे कभी न संचे । कर्ण, बलि, विक्रमादित्य इन राजाओंकी कीर्ति इस समयपर्यन्त वर्तमान है. दान भोगसे रहित बहुत दिनसे

संचित हमारे लोगोंका मधु नष्ट होगया, ऐसा देखकर मधुमक्खियाँ मधुके नाश होनेके कारण अपनेही दोनों पाओंको घिसाकरतीहैं १८॥

इति वृद्धचाणक्ये एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

सानंदंसदनंसुतास्तुसुधियः कान्ताप्रियालापिनी
इच्छापूर्तिधनंस्वयोषितिरतिःस्वाज्ञापराःसेवकाः॥
आतिथ्यंशिवपूजनंप्रतिदिनंमिष्टान्नपानंगृहे
साधोःसंगमुपासतेचसततंधन्योगृहस्थाश्रमः ॥१॥

सवैया–सानँद मंदिर पंडित पूत सुबोल रहै पुनि प्राण-
पियारी ॥ इच्छित संपति पूरि स्वतीयरती रहै-
सेवक भौंह निहारी । आतिथ औ शिवपूजन
रोज रहै घर संच सुअन्न औवारी॥साधुन संग उपा-
सत है नित धन्य अहै गृह आश्रमधारी ॥ १ ॥

भा०–यदि आनंदयुत घर मिले और लडके पंडित हों, स्त्री मधुरभाषिणी हो, इच्छाके अनुसार धन हो, अपनीही स्त्रीमें रतिहो, आज्ञापालक सेवक मिलें, अतिथिकी सेवा और शिवकी पूजा हो, प्रतिदिन गृहमें मीठा अन्न और जल मिले, सर्वदा साधुके संगकी उपासना, तो यह गृहस्थाश्रमही धन्य है ॥ १ ॥

आर्तेषुविप्रेषुदयान्वितश्चयच्छ्रद्धयास्वल्पमुपै-
तिदानम् ॥ अनंतपारंसमुपैतिराजन्यद्दीयते
तन्नलभेद्द्विजेभ्यः ॥ २ ॥

दोहा–दियो दयायुत साधुसों, आरत विप्रहि जौन ।
थोरो मिलै अनंत ह्वै, द्विजसे मिलै न तौन ॥२॥

भा०–जो दयावान् पुरुष आर्त ब्राह्मणोंको श्रद्धासे थोडाभी दान देता है उस पुरुषको अनन्त होकर वह मिलता है, जो दियाजाता है वह ब्राह्मणोंसे नहीं मिलताहै ॥ २ ॥

दाक्षिण्यंस्वजनेदयापरजनेशाठ्यंसदादुर्जने
प्रीतिःसाधुजनेस्मयःखलजनेविद्वज्जनेचार्जवम् ॥
शौर्यंशत्रुजनेक्षमागुरुजनेनारीजनेधूर्तता। इत्थं
ये पुरुषाःकलासुकुशलास्तेष्वेवलोकास्थितिः ॥३॥

कवित्त-दक्षतास्वजनबीचदया परजनबीचशठतासदाही
रहैबीचदुरजनके ॥ प्रीतिसाधुजनमेंखलनमाहिं
अभिमान सरलस्वभावरहैबीचपंडितनके॥ शत्रु-
नमेंशूरतासयाननमेंक्षमापूरधूरताईराखकेरीबी-
चनारीजनके ॥ ऐसेसबकलामेंकुशलरहैंजेतेलोग
लोकथितिरहिरहैबीचतिनहिनके ॥ ३ ॥

भा०-अपने जनमें दक्षता, दूसरे जनमें दया दुर्जनमें सदा दुष्टता, साधुजनमें प्रीति, खलमें अभिमान, विद्वानोंमें सरलता, शत्रु, जनमें शूरता, बडे लोगोंके विषयमें क्षमा, स्त्रीसे कामपडने पर धूर्तता इसप्रकारसे जो लोग कलामें कुशल होते हैं उन्होंमें लोककी मर्यादा रहती है ॥ ३ ॥

हस्तौदानविवर्जितौश्रुतिपुटौसारस्वतद्रोहिणौ
नेत्रेसाधुविलोकनेनरहितेपादौनतीर्थंगतौ ॥
अन्यायार्जितवित्तपूर्णमुदरंगर्वेणतुंगंशिरो
रेरेजम्बुकमुंचमुंचसहसानीचंसुनिंद्यंवपुः ॥ ४ ॥

ह०छं०-यह पाणि दानविहीन कान पुराण वेद सुने नहीं।
अरु आँखि साधुन दर्शहीन न पाँव तीरथगेकहीं ॥
अनियायवित्तभरोसुपेटउठ्योशिरोअभिमानहीं।
वपु नीच निंदित छोडु छोडु अरेसियारसो वेगही ॥४॥

भा०-हाथ दानरहित हैं, कान वेदशास्त्रके विरोधीहै, नेत्रोंने साधुका दर्शन नहींकिया, पाँवने तीर्थगमन नहीं किया. अन्यायसे अर्जित धनसे

अर्जित धनसे उदर भराहै और गर्वसे शिर ऊँचा होरहा है. रे रे सियार, ऐसे नीच निंद्य शरीरको शीघ्र छोड ॥ ४ ॥

येषांश्रीमद्यशोदासुतपदकमलेनास्तिभक्तिर्नराणां
येषामाभीरकन्याप्रियगुणकथनेनानुरक्तारसज्ञा ॥
येषांश्रीकृष्णलीलाललितरसकथासादरौनैवकर्णौ
धिक्तान्धिक्तान्धिगेतान्कथयतिसततंकीर्तनस्थो
मृदंगः ॥ ५ ॥

छंद–जो नरयशुमतिसुतचरणनमेंभक्तिहृदयसेनाहिंरखते ।
जो राधाप्रिय कृष्णचन्द्रके गुण जिह्वासे नहिं रटते ॥
जिनके दोउकाननमाहिंकथारसकृष्णचन्द्रकेनहिंगिरते
कीर्तनमाहिंमृदंगइन्हेंधिक्धिक्अपनीध्वनिसेकहते॥५॥

भा०–श्रीयशोदासुतके पदकमलमें जिन लोगोंकी भक्ति नहीं रहती, जिन लोगोंकी जीभ अहीरोंकी कन्याओंके प्रियके अर्थात् कृष्णके गुणगानमें प्रीति नहीं रखती और श्रीकृष्णजीकी लीलाकी ललित-कथाका आदर जिनके कान नहीं करते, उनलोगोंको धिक् है धिक्है धिक्है ऐसे कीर्त्तनको मृदंग सदा कहता है ॥ ५ ॥

पत्रंनैवयदाकरीरविटपेदोषोवसंतस्यकिं
नोलूकोप्यवलोकतेयदिदिवासूर्यस्यकिंदूषणम् ॥
वर्षंनैवपतेत्तुचातकमुखेमेघस्यकिंदूषणं
यत्पूर्वंविधिनाललाटलिखितंतन्मार्जितुंकःक्षमः ६

स०–पात न होय करीलनमें यदि दोष वसंतहि कौनतहांहै
त्यों जब देखि सकै न उलूक दिनै तहँ सूरजदोष कहांहै॥
चातक आनन बूँद परै नहिं मेघन दूषण कौन वहां है ।
जोकुछ पूरब माथलिखा विधिमेटनकोसमरत्थ कहांहै६॥

भा०–यदि करीलके वृक्षमें पत्ते नहीं होते तो वसंतका क्या अ-

पराध है? यदि उलूक दिनमें नहीं देखता तो सूर्यका क्या दोष है? वर्षा चातकके मुखमें नहीं पडती इसमें मेघका क्या अपराध है? पहिलेही ब्रह्माने जो कुछ ललाटमें लिखरक्खा है उसे मिटानेको कौन समर्थ है? ॥ ६ ॥

सत्संगाद्भवतिहिसाधुताखलनां साधूनांनहिख-
लसंगतःखलत्वम् ॥ आमोदंकुसुमभवंमृदेवधत्ते
मृद्गंधंनहिकुसुमानिधारयन्ति ॥ ७ ॥

व०ति०–सत्संगसों खलन साध स्वभाव सेवैं ।
साधून दुष्टपन संग परेहु लेवैं ॥
माटीहि वास कछु फूलन केरि पावै ।
माटीसुवास कहुँ फूल नहीं वसावै ॥ ७ ॥

भा०–निश्चय है कि, अच्छेके संगसे दुर्जनोंमें साधुता आजाती है, परन्तु साधुओंमें दुष्टोंकी संगतिसे असाधुता नहीं आती; फूलके गंधको मट्टी लेलेती है, पर मट्टीके गंधको फूल कभी नहीं धारणकरते ॥७॥

साधूनांदर्शनंपुण्यंतीर्थभूताहिसाधवः ॥
कालेनफलतेतीर्थं सद्यः साधुसमागमः ॥ ८ ॥

दोहा–साधूदर्शन पुण्य है, साधु तीर्थकेरूप ।
काल पाय तीरथ फलै, तुरतहि साधु अनूप ॥ ८ ॥

भा०–साधुओंका दर्शनही पुण्य है इसकारण कि; साधुतीर्थरूप है, समयसे तीर्थ फल देता है; साधुओंका संग शीघ्रही काम कर-देता है ॥ ८ ॥

विप्रास्मिन्नगरेमहान्कथयकस्तालद्रुमाणांगणः
कोदातारजकोददातिवसनंप्रातर्गृहीत्वानिशि ॥
कोदक्षःपरवित्तदारहरणेसर्वोपिदक्षोजनः
कस्माज्जीवसिहेसखेविषकृमिन्यायेनजीवाम्यहम् ९

कवित्त-कहो या नगरमें महान कौन? विप्र! तौन तारनके वृक्षके कतारके कतार हैं। दाता कहो कौन है? रजक देत साँझ आनि धोय शुभ्र वस्त्रनको लेत जो सकार है ॥ दक्ष कहो कौन हैं? प्रत्यक्ष सबही हैं दक्ष हरनेको कुशल परायो धनदार है। कैसे तुम जीवत? बताय कहो मोसों मीत विषकृमिन्याय करलीजे निरधार है ॥ ९ ॥

भा०-हे विप्र! इस नगरमें कौन बडा है? ताडके पेडोंकासमुदाय कौन दाता है? धोबी प्रातःकाल वस्त्रलेता है रात्रिमें देदेता है, चतुर कौन है? दूसरेके धन और स्त्रीके हरणमें सबही कुशल हैं तो ऐसे नगरमें आप कैसे जीते हो? हे मित्र! विषका कीडा विषहीमें जीता है वैसेही मैंभी जीताहूँ ॥ ९ ॥

नविप्रपादोदककर्दमानिनवेदशास्त्रध्वनिगर्जितानि ॥ स्वाहास्वधाकारविवर्जितानिश्मशान तुल्यानिगृहाणितानि ॥ १० ॥

दोहा-विप्रचरणके उदकसे, होत जहाँ नहिं कीच।
वेद ध्वनि स्वाहा नहीं, वे गृह मर्घट नीच ॥१०॥

भा०-जिन घरोंमें ब्राह्मणके पाँवोंके जलसे कीचड न भया हो और न वेदशास्त्रके शब्दकी गर्जना और जो गृह स्वाहा स्वधासे रहित हो उनको श्मशानके समान समझना चाहिये ॥ १० ॥

सत्यंमातापिताज्ञानंधर्मोभ्राता दयासखा ॥
शांतिः पत्नी क्षमापुत्रः षडेतेममबांधवाः ॥ ११ ॥

सोरठा-सत्य मातु पितु ज्ञान, सखा दया भ्राता धरम।
तिया शान्ति सुत जान, क्षमा यही षट् बन्धु मम॥११॥

भा०-सत्य मेरी माता है और ज्ञान पिता है धर्म मेरा भाई है और दया मित्र, शांति मेरी स्त्री है और क्षमा पुत्र येही छः मेरे बन्धु

है ॥ किसी संसारी पुरुषने ज्ञानीको देखकर चकित हो पूँछा कि, संसारमें माता पिता, भाई, मित्र, स्त्री, पुत्र, ये जितनाही अच्छेसे अच्छे हों उतनाही संसारमें आनंद होता है. तुझको परम आनंदमें मग्न देखताहूँ तो तुझको भी कहीं न कहीं कोई न कोई उनमेंसे होगा ज्ञानीने समझा कि, जिस दशाको देखकर यह चकित है वह दशा क्या सांसारिक कुटुम्बोंसे होसक्ती है इस कारण जिनसे मुझे परम आनंद होता है इन्हीको इससे कहूँ कदाचित् यहभी इनको स्वीकार करे ॥ ११ ॥

अनित्यानिशरीराणिविभवोनैवशाश्वतः ॥
नित्यंसन्निहितोमृत्युःकर्तव्योधर्मसंग्रहः ॥ १२ ॥

सोरठा—है अनित्य यह देह, विभव सदा नाहिं न रहै ।
निकट मृत्यु नित येह, चाहिय कीन्ह संग्रह धरम ॥ १२ ॥

भा०—शरीर अनित्य है, विभवभी सदा नहीं रहता, मृत्यु सदा निकटही रहता है इसकारण धर्मका संग्रह करना चाहिये ॥ १२ ॥

निमंत्रणोत्सवाविप्रागावोनवतृणोत्सवाः ॥
पत्युत्साहयुताभार्याअहंकृष्णरणोत्सवः ॥ १३ ॥

दोहा—पति उत्सव युवतीनको, गौवनको नवघास ॥
नेवतन द्विजको है हरी, मोहिं उत्सव रणवास ॥ १३ ॥

भा०—निमंत्रण ब्राह्मणोंका उत्सव है और नवीन घास गौओंका उत्सव है, पतिके उत्साहसे स्त्रियोंको उत्साह होता है, हे कृष्ण ! मुझको रणही उत्सव है ॥ १३ ॥

मातृवत्परदारांश्चपरद्रव्याणिलोष्टवत् ॥
आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति ॥ १४ ॥

दोहा—परधन माटीके सरिस, परतिय माता भेख ॥
आपुसरीखे जगत सब, जो देखे सो देख ॥ १४ ॥

भा०—दूसरेकी स्त्रीको माताके समान, दूसरेके द्रव्यको ढेलाके समान और अपने समान सब प्राणियोंको जो देखता है वही देखता है १४

धर्मेतत्परतामुखेमधुरतादानेसमुत्साहता
मित्रेऽवंचकतागुरौविनयिताचित्तेऽतिगंभीरता ॥
आचारेशुचितागुणेरसिकताशास्त्रेषुविज्ञातृता
रूपेसुंदरताशिवेभजनतात्वय्यस्तिभोराघव ॥१५॥

कवित्त–धर्म माहिं रुचि मुख मीठिवानि दानविचश-
क्तिमित्र संग नाहिं ठगनेकी बानि है। वृद्धों माहिं
नम्रता अरु मनमें गंभीरता शुद्ध है आचार गुण
विचार सज्ञान है ॥ शास्त्रका विशेष ज्ञान रूप
भी सुहावनो है शिवजूके भजनका सब काल
ध्यान है। कहे पुष्पवंत ज्ञानी राघोबीच जानो
सब और इकठोर कहिं इनको न भानहै ॥ १५ ॥

भा०–धर्ममें तत्परता, मुखमें मधुरता, दानमें उत्साहता, मित्रके विषयमें निश्छलता, गुरुसे नम्रता, अंतःकरणमें गंभीरता, आचारमें पवित्रता, गुणमें रसिकता, शास्त्रोंमें विशेषज्ञान, रूपमें सुन्दरता और शिवकी भक्ति, हे राघव ! ये आपहीमें हैं ॥ १५ ॥

काष्ठंकल्पतरुःसुमेरुरचलश्चिंतामणिःप्रस्तरः
सूर्यस्तीव्रकरःशशीक्षयकरःक्षारोहिवारांनिधिः ॥
कामोनष्टतनुर्बलिर्दितिसुतोनित्यंपशुःकामगौ
र्नौतांस्तेतुलयामिभोरघुपतेकस्योपमादीयते १६॥

कवित्त–कल्पवृक्ष काठ अरु अचल सुमेरुहै चिंतामणि
रत्नभी पाषाण जाति जानिये। सूरजमें उष्णता
अरु कलाहीन चंद्रमा सागरहु जलका खारी
यह जानिये ॥ कामदेव नष्टतनु अरु राजाबली
दैत्यसुत कामधेनु गौकीभी पशु जाति मानिये ॥
उपमा श्रीरामजूकी इनसे कछु तुलना और
कौन वस्तु जासे उपमा बखानिये ॥ १६ ॥

भा०-कल्पवृक्ष काठ है, सुमेरु अचल है, चिंतामणि पत्थर है, सूर्यकी किरण अत्यन्त उष्ण है चन्द्रमाकी किरण क्षीण होजाती हैं; समुद्र खारा है, कामका शरीर नहीं है, बलि दैत्य है, कामधेनु सदा पशुही है, इसकारण आपके साथ इनकी तुलना नहीं देसक्ते हैं. हे रघुपति! फिर आपको किसकी उपमा दीजाय? ॥ १६ ॥

+ विद्यामित्रंप्रवासेचभार्यामित्रंगृहेषुच ॥
व्याधितस्यौषधंमित्रंधर्मोमित्रंमृतस्यच ॥ १७ ॥

दोहा-विद्या मित्र विदेशमें, घरमें नारी मित्र ॥
रोगिहि औषध मित्र है, मरे धर्महै मित्र ॥ १७ ॥

भा०-प्रवासमें विद्याहित करती है, घरमें स्त्री मित्र है, रोगग्रस्त पुरुषका हित औषधहोताहै और धर्म मरेका उपकार करताहै ॥ १७ ॥

विनयंराजपुत्रेभ्यःपंडितेभ्यःसुभाषितम् ॥
अनृतंद्यूतकारेभ्यःस्त्रीभ्यःशिक्षेतकैतवम् ॥ १८ ॥

दोहा-राज सुतनसे विनय अरु, बुधसे सुंदर बात ॥
झूँठ जुवारिनसे कपट, स्त्रियोंसे सीखी जात ॥ १८ ॥

भा०-सुशीलता राजाके लडकोंसे, प्रियवचन पंडितोंसे; असत्य जुआरियोंसे और छल स्त्रियोंसे सीखना चाहिये ॥ १८ ॥

अनालोक्यव्ययंकर्ताअनाथःकलहप्रियः ॥
आतुरःसर्वक्षेत्रेषुनरःशीघ्रंविनश्यति ॥ १९ ॥

दोहा-बिनु विचार खर्चा करै, झगरे विनहि सहाय ॥
आतुर सब तियमों रहै, सो नर वेगि नशाय ॥ १९ ॥

भा०-विनाबिचारे व्यय करनेवाला, सहायकके न रहनेपरभी कलहमें प्रीति रखनेवाला और सब जातिकी स्त्रियोंमें भोगकेलिये व्याकुल होनेवाला पुरुष शीघ्रही नष्ट होता है ॥ १९ ॥

नाहारंचिंतयेत्प्राज्ञोधर्ममेकंहिचिंतयेत् ॥
आहारोहिमनुष्याणांजन्मनासहजायते ॥ २० ॥

दोहा—नाहिं अहार चिंताहि सुमत, चिंतहि धर्महि एक।
होहिं साथही नरनके, नरहि अहार अनेक ॥२०॥
भा०—पंडितको आहारकी चिंता नहीं करनी चाहिये एक धर्मको निश्चयते सोचना चाहिये. इस हेतु कि, आहार मनुष्योंको जन्मके साथही उत्पन्न होता है ॥ २० ॥

धनधान्यप्रयोगेषुविद्यासंग्रहणेतथा।
आहारेव्यवहारेचत्यक्तलज्जःसुखीभवेत् ॥ २१ ॥

दोहा—लेन देन धन अन्नके, विद्या पढने माहिं।
भोजन सभा विवादमो, तजै लाज सुख ताहिं ॥२१॥
भा०—धनधान्यके व्यवहार करनेमें, वैसेही विद्याके पढने पढानेमें, आहारमें और राजाकी सभामें, किसीके साथ विवाद करनेमें जो लज्जाको छोडे रहेगा वही सुखी होगा ॥ २१ ॥

जलबिंदुनिपातेनक्रमशःपूर्यतेघटः ॥
सहेतुःसर्वविद्यानांधर्मस्यचधनस्यच ॥ २२ ॥

दोहा--एक एक जलबूँदके, परते घट भरिजाय।
सब विद्याधनधर्मको, कारण यही कहाय ॥ २२ ॥
भा०—क्रमसे जलके एक एक बूँदके गिरनेसे घडा भरजाता है यही सब विद्या धर्म और धनकाभी कारण है ॥ २२ ॥

वयसःपरिणामेऽपियःखलःखलएवसः ॥
संपक्कमपिमाधुर्यंनोपयातींद्रवारुणम् ॥ २३ ॥

दोहा—बीतिगयेहू उमिरके, खल खलही रहिजाय।
पकेहु मिठाई गुण कहीं, नाहिन वारुण पाय ॥२३॥
भा०—जो खल रहता है सो वयके परिणाम परभी खलही बनारहता है अत्यन्त पकीभी तित्तलौकी मीठी नहीं होती ॥ २३ ॥

इति वृद्धचाणक्ये द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

मुहूर्तमपिजीवेच्चनरःशुक्लेनकर्मणा ॥
नकल्पमपिकष्टेनलोकद्वयविरोधिना ॥ १ ॥

दोहा-बरु नर जिवै मुहूर्त्तभर, करिकै शुचि सत्कर्म ।
नहिं भरि कल्पहु लोकदुहुँ, करत विरोध अधर्म॥१॥

भा०-उत्तम कर्मसे मनुष्योंको मुहूर्त्तभरका जीनाभी श्रेष्ठ है दोनों लोकोंके विरोधी दुष्टकर्मसे कल्पभरकाभी जीना उत्तम नहीं है ॥ १ ॥

गतेशोकोनकर्तव्योभविष्यंनैवचिन्तयेत् ॥
वर्तमानेनकालेनप्रवर्तन्तेविचक्षणाः ॥ २ ॥

दोहा-गतवस्तुन शोचै नहीं, गुनै न होनीहार ।
कार करहिं परवीन जन, आय परे अनुसार ॥२॥

भा०-गतवस्तुका शोक और भावीकी चिंता नहीं करनी चाहिये कुशल लोग वर्तमानकालके अनुरोधसे प्रवृत्त होते हैं ॥ २ ॥

स्वभावेनहितुष्यंतिदेवाःसत्पुरुषाःपिता ॥
ज्ञातयःस्नानपानाभ्यांवाक्यदानेनपंडिताः ॥ ३ ॥

दोहा-देव सत्पुरुष अरु पिता, करहिं सुभाव प्रसाद ।
स्नानपान लहि बंधु सब, पंडित पाय सुवाद ॥ ३ ॥

भा०-निश्चय है कि, देवता सत्पुरुष और पिता ये प्रकृतिसे संतुष्ट होते हैं, पर बन्धु स्नान और पानसे और पण्डित प्रिय-वचनसे ॥ ३ ॥

आयुःकर्मचवित्तंचविद्यानिधनमेवच ॥
पंचैतानिचसृज्यंतेगर्भस्थस्यैवदेहिनः ॥ ४ ॥

दोहा-आयुर्बल धन कर्म औ, विद्या मरण गणाय ।
पाँचौ रहते गर्भमें, जीवनके रचिजाय ॥ ४ ॥

भा०-आयुर्दाय, कर्म, विद्या, धन और मरण ये पाँच जब जीवगर्भमें रहताहै उसीसमय सिरजेजातेहैं ॥ ४ ॥

अहोबतविचित्राणिचरितानिमहात्मनाम् ॥
लक्ष्मींतृणायमन्यन्तेतद्भारेणनमंतिच ॥ ५ ॥

दोहा-अचरज चरित विचित्र अति, बडेजननके आहिं ।
जे तृणसम सम्पति मिले, तासु भार नै जाहिं ॥५॥

भा०-आश्चर्य है कि, महात्माओंके विचित्र चरित्र हैं. लक्ष्मीको तृणसमान मानते हैं, यदि मिलती है तो उसके भारसे नम्र होजातेहैं ॥ ५ ॥

यस्यस्नेहोभयंतस्यस्नेहोदुःखस्यभाजनम् ॥
स्नेहमूलानिदुःखानितत्तंत्यक्त्वावसेत्सुखम् ॥ ६ ॥

दोहा-जाहि प्रीति भय ताहिको, प्रीति दुःखको पात्र ।
प्रीति मूल दुख त्यागिके, बसै तबै सुखमात्र ॥ ६ ॥

भा०-जिसको किसीमें प्रीति रहतीहै उसीको भय होताहै, स्नेहही दुःखका भाजन है और सब दुःखका कारण स्नेहही है इसकारण उसे छोड़कर सुखी होना उचित है ॥ ६ ॥

अनागतविधाताचप्रत्युत्पन्नमतिस्तथा ॥
द्वावेतौसुखमेधेतेयद्भविष्योविनश्यति ॥ ७ ॥

दोहा-पहिलहि करत उपाय जो, परेहु तुरत जेहि सूझ ।
दुहुन बढत सुखमरतजो, होनी गुणत अबूझ ॥७॥

भा०-आनेवाले दुःखके पहिलेसे उपाय करनेवाला और जिसकी बुद्धिमें विपत्ति आजानेपर शीघ्रही उपायभी आजाताहै ये दोनों सुखसे बढतेहैं और जो सोचताहै कि, भाग्यवशसे जो होनेवालाहै सो अवश्य होगा वह विनष्ट होजाताहै ॥ ७ ॥

राज्ञिधर्मिणिधर्मिष्ठाःपापेपापाःसमेसमाः ॥
राजानमनुवर्त्तन्तेयथाराजातथाप्रजाः ॥ ८ ॥

दोहा-नृप धर्मी तो धर्म युत, पापी पाप अचार ॥
जस राजा तैसी प्रजा, चलत राज अनुसार ॥ ८ ॥

भा०-यदि धर्मात्मा राजा होताहै तो प्रजाभी धर्मिष्ठ होती है; यदि पापी हो तो पापी होतीहै, सब प्रजा राजाके अनुसार चलतीहै, जैसा राजा वैसी प्रजाभी होती है ॥ ८ ॥

जीवन्तंमृतवन्मन्येदेहिनं धर्मवर्जितम् ॥
मृतोधर्मेणसंयुक्तोदीर्घजीवीनसंशयः ॥ ९ ॥

दोहा-जीवत हूँ समझै मरेउ, मनुजहिं धर्मविहीन ।
नहिं संशय चिरजीव सो, मरेहु धर्म जेहिकी न ॥ ९ ॥

भा०-धर्मरहित जीतेको मृतके समान समझताहूँ. निश्चय है कि, धर्मयुत मराभी पुरुष चिरंजीवीही है ॥ ९ ॥

* धर्मार्थकाममोक्षाणांयस्यकोऽपिनविद्यते ॥
अजागलस्तनस्येवतस्यजन्मनिरर्थकम् ॥ १० ॥

दोहा-धर्म अर्थ अरु काम अरु, मोक्ष न एकौ जासु ॥
अजाकंठकुचके सरिस, व्यर्थ जन्म है तासु ॥ १० ॥

भा०-धर्म, अर्थ, काम; मोक्ष इन्होंमेंसे जिसको एकभी नहीं रहता बकरीके गलस्तनके समान उसका जन्म निरर्थक है ॥ १० ॥

दह्यमानाःसुतीव्रेणनीचाःपरयशोऽग्निना ॥
अशक्तास्तत्पदंगन्तुंततोनिंदांप्रकुर्वते ॥ ११ ॥

दोहा-और अगिन जस दुसहसों, जरिजरि दुर्जन नीच ।
आप न तैसो करिसकैं, तब तिहि निन्दहिं बीच ॥ ११ ॥

भा०-दुर्जन दूसरेकी कीर्तिरूप दुःसह अग्निसे जलकर उसके पदको नहीं पाते इसलिये उसकी निन्दा करने लगते हैं ॥ ११ ॥

बन्धायविषयासङ्गोमुक्तौर्निर्विषयंमनः ॥
मनएवमनुष्याणांकारणंबन्धमोक्षयोः ॥ १२ ॥

दोहा-विषयसंग परिबंध करु, विषयहीन निर्वान ।
बंधमोक्ष इन दुहुँनको, कारण मनै न आन ॥१२॥

भा०-विषयमें आसक्त मन बन्धका हेतु है; विषयसे रहित मुक्तिका मनुष्योंके बन्ध और मोक्षका कारण मनही है ॥ १२ ॥

देहाभिमानेगलितेज्ञानेनपरमात्मनः ॥
यत्रयत्रमनोयातितत्रतत्रसमाधयः ॥ १३ ॥

दोहा-ब्रह्मज्ञानसों देहको, विगत भये अभिमान ।
जहँ जहँ मन जात है, तहँ समाधिहि जान ॥१३॥

भा०-परमात्माके ज्ञानसे देहके अभिमानका नाश होजानेपर जहाँ जहाँ मन जाता है तहाँ तहाँ समाधिहीहै ॥ १३ ॥

ईप्सितंमनसःसर्वंकस्यसंपद्यतेसुखम् ॥
दैवायत्तंयतःसर्वंतस्मात्सन्तोषमाश्रयेत् ॥ १४ ॥

दोहा-इच्छित सब सुख केहि मिले, जब सब दैवाधीन ।
याहिते संतोषहि शरण, चाहिय चतुर कह कीन ॥१४॥

भा०-मनका अभिलषित सब सुख किसको मिलता है. जिस कारण सब दैवके वश हैं इससे संतोषपर भरोसा करना उचित है ॥ १४ ॥

यथाधेनुसहस्त्रेषुवत्सोगच्छतिमातरम् ॥
तथायच्चकृतंकर्मकर्त्तारमनुगच्छति ॥ १५ ॥

दोहा-जैसे धेनु हजारमें, वत्स जाय लखि मात ॥
तैसेही कीन्हों करम, करतारिके ढिग जात ॥ १५ ॥

भा०-जैसे सहस्रो धेनुके रहते बछरा माताहीके निकट जाता है; वैसेही जो कुछ कर्म कियाजाताहै सो कर्ताहीको मिलता है ॥ १५ ॥

अनवस्थितकार्यस्यनजनेनवनेसुखम् ॥
जनोदहतिसंसर्गाद्वनंसङ्गविवर्जनात् ॥ १६ ॥

दोहा–अनथिरकारजते न सुख, जन औ वन दुहुँमाहिं ।
जन तेहिं दाहैं संगते, वन बिनसंगहि दाहिं ॥१६॥

भा०–जिसके कार्यकी स्थिरता नहीं रहती वह न जनमें और न वनमें सुख पाता है, जन उसको संसर्गसे जराता है और वन संगके त्यागसे जराता है ॥ १६ ॥

यथाखात्वाखनित्रेणभूतलेवारिविन्दति ॥
तथागुरुगतांविद्यांशुश्रूषुरधिगच्छति ॥ १७ ॥

दोहा–जिमि खोदेहीते मिलै, भूतलके मधि वारि ॥
तैसेहि सेवाके किये, गुरु विद्या मिल धारि ॥१७॥

भा०–जैसे खननेके साधनसे खनके नर पातालके जलको पाताहै वैसेही गुरुगत विद्याको सेवक (शिष्य) पाता है ॥ १७ ॥

कर्मायत्तंफलंपुंसांबुद्धिःकर्मानुसारिणी ॥
तथापिसुधियश्चार्याःसुविचार्यैवकुर्वते ॥ १८ ॥

दोहा–फलसिधि कर्म अधीन है, बुद्धि कर्म अनुसारि ।
तौहू सुमति महान जन, कारज करहिं विचारि ॥१८॥

भा०–यद्यपि फल पुरुषके कर्मके अधीन रहता है और बुद्धि कर्मके अनुसारही चलती है तथापि विवेकी महात्मा लोग विचारहीके काम करते हैं ॥ १८ ॥

सन्तोषस्त्रिषुकर्तव्यः स्वदारेभोजनेधने ॥
त्रिषुचैवनकर्तव्योऽध्ययनेजपदानयोः ॥ १९ ॥

दोहा–निज तिय धर्म भोजन तिहूं, चहिय कीन्ह संतोष ।
पठन दान तपमें नहीं, तहँ संतोषै दोष ॥ १९ ॥

भा०-स्त्री, भोजन और धन इन तीनमें सन्तोष करना उचित है, पढना, तप और दान इन तीनमें सन्तोष कभी नहीं करना चाहिये ॥ १९ ॥

एकाक्षरप्रदातारंयोगुरुंनाभिवंदते ॥
श्वानयोनिशतंभुक्त्वाचाण्डालेष्वभिजायते ॥२०॥

दोहा-एक अक्षर दातहु गुरुहिं, जो नर वन्दै नाहिं ।
जन्म सैकड़ों श्वान है, जनै चँडालन माहिं ॥ २० ॥

भा०-जो एक अक्षरभी देनेवाले गुरुकी वन्दना नहीं करता वह कुत्तेकी सौ योनिको भोगकर चांडालोंमें जन्मता है ॥ २० ॥

युगांतेप्रचलेन्मेरुःकल्पांतेसप्तसागराः ॥
साधवःप्रतिपन्नार्थानचलंतिकदाचन ॥ २१ ॥

दोहा-सातसिंधु कल्पांत चलु, मेरु चलै युग अन्त ।
परे प्रयोजनते कबहुँ, नहिं चलते हैं सन्त ॥ २१ ॥

भा०-युगके अन्तमें सुमेरु चलायमान होता है और कल्पके अंतमें सातों सागर, परन्तु साधुलोग स्वीकृतअर्थसे कभी नहीं विचलते ॥ २१ ॥

इति श्रीवृद्धचाणक्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.

पृथिव्यांत्रीणिरत्नानिजलमन्नंसुभाषितम् ॥
मूढैःपाषाणखंडेषुरत्नसंख्याविधीयते ॥ १ ॥

म०छं०-अन्न वारि चारु बोल । तीनि रत्न भू अमोल ॥
मूढलोगने पषान, टूक रत्नके बखान ॥ १ ॥

भा०-पृथ्वीमें जल अन्न और प्रियवचन ये तीनही रत्न हैं; मूढोंने पाषाण के टुकडोंमें रत्नकी गिनती की है ॥ १ ॥

आत्मापराधवृक्षस्यफलान्येतानिदेहिनाम् ॥
दारिद्र्यरोगदुःखानिबंधनव्यसनानिच ॥ २ ॥

म०छं०–निर्धनत्व दुःख रोग। बन्ध और विपत्ति शोक ॥
है स्वपापवृक्ष जात। ए फलै धरेके गात ॥ २ ॥

भा०–जीवोंको अपने अपराधरूप वृक्षके दरिद्रता, रोग, दुःख, बन्धन और विपत्ति ये फल होते हैं ॥ २ ॥

पुनर्वित्तंपुनर्मित्रंपुनर्भार्य्यापुनर्मही ॥
एतत्सर्वंपुनर्लभ्यंनशरीरंपुनःपुनः ॥ ३ ॥

म०छं०–फेरि वित्त फेरि मित्त। फेरि ती धराहु नित्त ॥
फेरि फेरि सर्व एह। मानुषी मिलै न देह ॥ ३ ॥

भा०–धन,मित्र, स्त्री और पृथ्वी ये फिर मिलते हैं; परन्तु यह मनुष्य-शरीर फिर फिर नहीं मिलता ॥ ३ ॥

बहूनांचैवसत्त्वानांसमवायोरिपुंजयः ॥
वर्षाधाराधरोमेघस्तृणैरपिनिवार्यते ॥ ४ ॥

म०छं०–एक है अनेक लोग। वीर्य शत्रु जीति योग ॥
मेघ धार वारि देत। घासढेर वारि देत ॥ ४ ॥

भा०–निश्चय है कि, बहुतजनोंका समुदाय शत्रुको जीत लेताहै, तृण समूहभी वृष्टिकी धाराके धरनेवाले मेघका निवारण करताहै ॥ ४ ॥

जलेतैलंखलेगुह्यंपात्रेदानंमनागपि ॥
प्राज्ञेशास्त्रंस्वयंयातिविस्तारंवस्तुशक्तितः ॥ ५ ॥

म०छं०–थोर तेल वारि माहिं। गुप्तहू खलानि पाहिं ॥
दान शास्त्र पात्र ज्ञानि। ये बढ़ै स्वभाव आनि ॥५॥

भा०–जलमें तेल, दुर्जनमें गुप्तवार्ता, सुपात्रमें दान और बुद्धिमानमें शास्त्र ये थोड़ेभी हों तो भी वस्तुकी शक्तिसे अपने आप विस्तारको प्राप्त होजातेहैं ॥ ५ ॥

धर्माख्यानेश्मशानेचरोगिणांयामतिर्भवेत् ॥
सासर्वदैवतिष्ठेच्चेत्कोनमुच्येतबंधनात् ॥ ६ ॥

म०छं०-धर्मवारता मशान । रोगमाहिं जौन ज्ञान ।
जो रहै वही सदोइ । बंध को न मुक्ति होइ ॥६॥

भा०-धर्मविषयक कथामें श्मशानपर और रोगियोंको जो बुद्धि उत्पन्न होतीहै वह यदि सदा रहती तो कौन बन्धनसे मुक्त न होता ॥६॥

उत्पन्नपश्चात्तापस्थबुद्धिर्भवतियादृशी ॥
तादृशीयदिपूर्वस्यात्कस्यनस्यान्महोदयः ॥ ७ ॥

म०छं०-आदि चूकि अंत शोच । जो रहै विचारि दोच ॥
पूर्वही बनै जो तैस । कौन को मिलै न ऐस ॥ ७ ॥

भा०-निंदित कर्म करनेके पश्चात् पछतानेवाले पुरुषको जैसी बुद्धि उत्पन्न होती है वैसी यदि पहिले होती तो किसको बडी समृद्धि न होती ॥ ७ ॥

दानेतपसिशौर्येवाविज्ञानेविनयेनये ॥
विस्मयोनहिकर्तव्योबहुरत्नावसुंधरा ॥ ८ ॥

म०छं०-दाननय विनय नगीच । शूरता विज्ञान बीच ।
कीजिये अचर्ज नाहिं । रत्नढेर भूमि माहिं ॥८॥

भा०-दानमें, तपमें, शूरतामें, विज्ञतामें, सुशीलतामें औ नीतिमें विस्मय नहीं करना चाहिये. इसकारण कि, पृथ्वीमें बहु रत्न हैं ॥ ८ ॥

दूरस्थोऽपिनदूरस्थोयोयस्यमनसिस्थितः ॥
योयस्यहृदयेनास्तिसमीपस्थोऽपिदूरतः ॥ ९ ॥

म०छं०-दूरहू बसै नगीच । जासु जौन चितबीच ।
जौ न जासु चित्त पूर । है समीपहू सो दूर ॥ ९॥

भा०-जो जिसके हृदयमें रहता है वह दूरभी हो तौभी वह दूर नहीं. जो जिसके मनमें नहीं है वह समीपभी हो तौभी वह दूर है ॥ ९ ॥

यस्माच्चप्रियमिच्छेत्तुतस्यब्रूयात्सदाप्रियम् ॥
व्याधोमृगवधंगंतुंगीतंगायतिसुस्वरम् ॥ १० ॥

म०छं०-जाहिते चहै सुपास, मीठी बोलि तासुपास ।
व्याध मारिबे मृगान । मंजु गावतो सुगान॥१०॥

भा०-जिससे प्रियकी वांछा हो उससे सदा प्रिय बोलना उचित है. व्याध मृगके वधके निमित्त मधुस्वरसे गीत गाता है ॥ १० ॥

अत्यासन्नाविनाशायदूरस्थानफलप्रदाः ॥
सेव्यतांमध्यभागेनराजावह्निर्गुरुःस्त्रियः ॥ ११ ॥

म०छं०-अतिपास नाशहेत । दूरहू फलै न देत ।
सेवनीय मध्यभाग । गुरू भूप नारि आग ॥११॥

भा०-अत्यंत निकट रहनेपर विनाशके हेतु होते हैं, दूर रहनेसे फल नहीं देते. इस हेतु राजा, अग्नि, गुरु और स्त्री इनको मध्यम अवस्थासे सेवना चाहिये ॥ ११ ॥

अग्निरापःस्त्रियोमूर्खःसर्पोराजकुलानिच ॥
नित्यंयत्नेनसेव्यानिसद्यःप्राणहराणिषट् ॥ १२ ॥

म०छं०-अग्नि सर्प मूर्ख नारि । राजवंश और वारि ।
यत्नसाथ सेवनीय । सद्य ये हरैं छ जीय ॥ १२ ॥

भा०-आग, जल, स्त्री, मूर्ख, साँप और राजाके कुल ये सदा सावधानतासे सेवनेके योग्य हैं. ये छः शीघ्र प्राणके हरनेवाले हैं॥ १२॥

सजीवतिगुणायस्ययस्यधर्मःसजीवति ॥
गुणधर्मविहीनस्यजीवितंनिष्प्रयोजनम् ॥ १३ ॥

म०छं०-जीवतो गुणी जो होय । वा सुधर्मयुक्त जोय ॥
धर्म औ गुणो न जासु । जीवना सुव्यर्थतासु ॥ १३ ॥

भा०-वही जीताहै, जिसके गुण हैं, और वही जीताहै, जिसके धर्म हैं, गुण और धर्मसे हीन पुरुषका जीना व्यर्थ है ॥ १३ ॥

यदीच्छसिवशीकर्तुंजगदेकेनकर्मणा ॥
पुरापंचदशास्येभ्योगांचरंतींनिवारय ॥ १४ ॥

म०छं०-चाहते वशौ जो कीन । एक कर्म लोग तीन ॥
पंद्रहोंके तौ मुखान । जानतौ बहोरु आन ॥१४॥

भा०-जो एकही कर्मसे जगत्को वश किया चाहते हो तो पहिले पन्द्रहोंके मुखसे मनको निवारण करो, तात्पर्य यह है कि,आंख,कान नाक, जीभ, त्वचा ये पाँचों ज्ञानेन्द्रिय हैं. मुख, हाथ, पाँव, लिंग, गुदा, ये पाँच कर्मेन्द्रिय हैं. शब्द, स्पर्श रस, रूप, गन्ध, ये पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके विषयहैं इन पन्द्रहोंसे मनको निवारण करना उचितहै १४

प्रस्तावसदृशंवाक्यंप्रभावसदृशंप्रियम् ॥
आत्मशक्तिसमंकोपंयोजानातिसपण्डितः ॥ १५ ॥

सो०-प्रिय स्वभाव अनुकूल, योग्य प्रसंगे वचन पुनि ।
निज बलके सम तूल, कोप जानुपंडित सोइ ॥१५॥

भा०-प्रसंगके योग्य वाक्य, प्रकृत्तिके सदृश प्रिय और अपने युक्तिके अनुसार कोपको जो जानता है वह बुद्धिमान् है ॥ १५ ॥

एकएवपदार्थस्तु त्रिधाभवतिवीक्षितः ॥
कुणपःकामिनीमांसंयोगिभिःकामिभिःश्वभिः १६

सो०-वस्तु एकही होय, तीनि तरह देखी गति ।
रति मृत मांसू सोय, कामि योगि कुत्तेनसों ॥१६॥

भा०-एकही देहरूप वस्तु तीन प्रकारकी देख पडती है; योगी-

लोग उसको अतिनिन्दित मृतकरूपसे, कामीपुरुष कांतारूपसे और कुत्ते मांसरूपसे देखते हैं ॥ १६ ॥

सुसिद्धमौषधंधर्मंगृहच्छिद्रंचमैथुनम् ॥
कुभुक्तंकुश्रुतंचैवमतिमान्नप्रकाशयेत् ॥ १७ ॥

सो०-सिद्धौषध औ धर्म, मैथुन कुवचन भोजनौ ।
अपने घरका मर्म, चतुर नाहिं प्रगटित करैं ॥१७॥

भा०-सिद्धऔषध, धर्म, अपने घरका दोष, मैथुन, कुअन्नका भोजन और निंदित वचन इनका प्रकाश करना बुद्धिमानको उचित नहीं है ॥ १७ ॥

तावन्मौनेननीयन्तेकोकिलैश्चैववासराः ॥
यावत्सर्वजनानन्ददायिनीवाक्प्रवर्तते ॥ १८ ॥

सो०-तौलौं मौने ठानि, कोकिलहू दिन काटते ।
जोलौं आनँदखानि, सबको वाणी होत है ॥१८॥

भा०-तबलौं कोकिल मौनसाधनसे दिन बिताता है, जबलौं सबजनोंको आनन्द देनेवाली वाणीका प्रारंभ करता है ॥ १८ ॥

धर्मंधनंचधान्यंचगुरोर्वचनमौषधम् ॥
सुगृहीतंचकर्तव्यमन्यथातुनजीवति ॥ १९ ॥

सो०-धर्म धान्य धनवानि, गुरुवच औषध पाँच यह ।
ग्रहण करै शुभ जानि, भले और विधि नाहिं जिवै १९

भा०-धर्म, धन, धान्य, गुरुका वचन और औषध यदि ये सुगृहीत हों तौ इनको भली भाँतिसे करना चाहिये, जो ऐसा नहीं करता वही नहीं जीता ॥ १९ ॥

त्यजदुर्जनसंसर्गंभजसाधुसमागमम् ॥
कुरुपुण्यमहोरात्रंस्मरनित्यमनित्यतः ॥ २० ॥

सो०-तजौ दुष्टसहवास, भजौ साधु संगम रुचिर ।
करौ पुण्य परकास, हरि सुमिरौ जग नित्य नहिं ॥ २० ॥

भा०-खलका संग छोड साधुकी संगतिको स्वीकारकर, दिन रात पुण्य किया कर, और ईश्वरका नित्य स्मरण कर इसकारण कि संसार अनित्य है ॥ २० ॥

इति वृद्धचाणक्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः १५.

यस्यचित्तंद्रवीभूतंकृपयासर्वजन्तुषु ॥
तस्यज्ञानेनमोक्षेणकिंजटाभस्मलेपनैः ॥ १ ॥

दोहा-जासु चित्त सब जन्तुर, गलित दया रसमाह ।
तासु ज्ञान मुक्ती जटा, भस्मलेप करु काह ॥ १ ॥

भा०-जिसका चित्त सब प्राणियोंपर दयासे पिघिल जाता है उसको ज्ञानसे, मोक्षसे, जटासे और विभूतिके लेपनसे क्या? ॥ १ ॥

एकमेवाक्षरंयस्तुगुरुःशिष्यंप्रबोधयेत् ॥
पृथिव्यांनास्तितद्द्रव्यंयद्दत्त्वाचानृणीभवेत् ॥ २ ॥

दोहा-एकौ अक्षर जो गुरु, शिष्यहि देत जनाय ।
भूमिमाहिं धन नाहिं बह, जोदै अनृण कहाय ॥२॥

भा०-जो गुरु शिष्यको एकभी अक्षरका उपदेश करता है पृथ्वीमें ऐसा द्रव्य नहीं है जिसको देकर शिष्य उससे उत्तीर्ण होय ॥ २ ॥

खलानांकण्टकानांचद्विविधैवप्रतिक्रिया ॥
उपानन्मुखभंगोवादूरतोवाविसर्जनम् ॥ ३ ॥

दोहा-खल काँटा इन दुहुँनको, दोई जगत उपाय ।
जूतनते मुख तोडिबो, रहिबो दूर बचाय ॥ ३ ॥

भा०-खल और कांटा इनका दोही प्रकारका उपाय है, जूतासे मुखका तोडना वा दूरसे त्याग ॥ ३ ॥

+ कुचैलिनंदन्तमलोपधारिणंबह्वाशिनंनिष्ठुरभाषिणंच ॥ सूर्योदयेचास्तमितेशयानंविमुंचतिश्रीर्यदिचक्रपाणिः ॥ ४ ॥

दोहा-वसन दशन राखै मलिन, बहु भोजन कटुबैन ।
सोवै रवि छिपवत उगत, तजु श्री जो हरि ऐन ॥४॥

भा०-मलिन वस्त्रवालेको, जो दाँतोंके मलको दूर नहीं करता उसको, बहुत भोजन करनेवालेको, कटुभाषीको, सूर्यके उयद और अस्तके समयमें सोनेवालेको, लक्ष्मी छोड देती है; चाहौ वह विष्णु हो ॥ ४ ॥

त्यजंतिमित्राणिधनैर्विहीनंदाराश्चभृत्याश्चसुहृज्जनाश्च ॥ तंचार्थवंतंपुनराश्रयंतेऽतोर्थोहिलोकेपुरुषस्यबंधुः ॥ ५ ॥

दोहा-तजहिं तीय हितमीत औ, सेवक धन जब नाहिं ।
धन आये सेवैं बहुरि, धनै बन्धु जगमाहिं ॥ ५ ॥

भा०-मित्र, स्त्री, सेवक और बन्धु ये धनहीन पुरुषको छोडदेते हैं और वही पुरुष यदि धनी होजाता है तौ फिर उसीका आश्रय करते हैं अर्थात् धनही लोकमें बन्धु है ॥ ५ ॥

अन्यायोपार्जितंद्रव्यंदशवर्षाणितिष्ठति ॥
प्राप्तेचैकादशेवर्षेसमूलंचविनश्यति ॥ ६ ॥

दोहा-करि अनीति जोरेउ धनहि, दशौ वर्ष ठहराय ॥
ग्यारहवेंके लागते, जरा मूलसों जाय ॥ ६ ॥

भा०-अनीतिसे अर्जित धन दश वर्ष पर्यंत ठहरता है, ग्यारहवें वर्षके प्राप्त होनेपर मूल सहित नष्ट होजाता है ॥ ६ ॥

अयुक्तंस्वामिनोयुक्तंयुक्तंनीचस्यदूषणम् ॥
अमृतंराहवेमृत्युर्विषंशंकरभूषणम् ॥ ७ ॥

दोहा-खोटो भल समरत्थ पहँ, भलौ खोट लहि नीच ।
विषौ भया भूषण शिवहिं, अमृत राहु कहँ मीच ॥ ७ ॥

भा०-अयोग्यभी वस्तु समर्थको योग्य होती है और योग्यभी दुर्जनको दूषण. अमृतने राहुको मृत्यु दिया, विषभी शंकरको भूषण हुवा ॥ ७ ॥

तद्भोजनंयद्द्विजभुक्तशेषंतत्सौहृदंयत्क्रियतेपर-
स्मिन् ॥ साप्राज्ञतायानकरोतिपापंदंभंविनायः
क्रियतेसधर्मः ॥ ८ ॥

दोहा-द्विज उबरेउ भोजन सोई, परमहँ मैत्री सोय ।
जेहि न पाप वह चतुरता, धर्म दंभ विनु जोय ॥८॥

भा०-वही भोजन है जो ब्राह्मणके भोजनसे बचाहै, वही मित्रताहै जो दूसरेमें की जाती है, वही बुद्धिमानी है जो पाप नहीं करती और बिना दंभके किया जाता है वही धर्म है ॥ ८ ॥

मणिर्लुठतिपादाग्रेकाचःशिरसिधार्यते ॥
क्रयविक्रयवेलायांकाचःकाचोमणिर्मणिः ॥ ९ ॥

दोहा-मणि लोटत रहु पाँवतर, काँच रह्यो शिर जाय ।
लेत देत मणि मणि रहै, काँच काँच रहिजाय ॥९॥

भा०-मणि पाँवके आगे लोटती हो और काँच शिरपरभी रक्खा हो परन्तु क्रय विक्रय समयमें काँच काँचही रहता है और मणि मणिही ॥ ९ ॥

अनंतशास्त्रंबहुलाश्चविद्याअल्पश्चकालोबहुविघ्न
ताच ॥ यत्सारभूतंतदुपासनीयंहंसोयथाक्षीरमि-
वांबुमध्यात् ॥ १० ॥

दोहा-बहुत विघ्न कम काल है, विद्या शास्त्र अपार ।
जलसे जैसे हंस पय, लीजै सार निसार ॥ १० ॥

भा०-शास्त्र अनन्त हैं और विद्या बहुत; काल थोडा है और विघ्न बहुत. इसकारण जो सारहै उसको लेलना उचित है, जैसे हंस जलके मध्यसे दूधको लेलेता है ॥ १० ॥

दूरागतंपथि श्रांतंवृथाचगृहमागतम् ॥
अनर्चयित्वायोभुंक्तेसवैचांडालउच्यते ॥ ११ ॥

दोहा-दूर देशते राहथकि, विनु कारज घर आय ।
तेहि विनु पूँछे खाय जो, सो चंडाल कहाय ॥ ११ ॥

भा०-दूरसे आयेको, पथसे थकेको और निरर्थक गृहपर आयेको बिनापूजे जो खाताहै वह चांडालही गिना जाताहै ॥ ११ ॥

पठंतिचतुरोवेदान्धर्मशास्त्राण्यनेकशः ॥
आत्मानंनैवजानंतिदर्वीपाकरसंयथा ॥ १२ ॥

दोहा-पढै चारहू वेदहूँ, धर्मशास्त्र बहु वाद ।
आपुहि जानै नाहिं ज्यों, करछिहि व्यंजन स्वाद ॥ १२ ॥

भा०-चारों वेद और अनेक धर्मशास्त्र पढते हैं परन्तु आत्माको नहीं जानते जैसे कलछी पाकके रसको ॥ १२ ॥

धन्याद्विजमयीनौकाविपरीताभवार्णवे ।
तरंत्यधोगताः सर्वउपरिस्थाःपतंत्यधः ॥ १३ ॥

दोहा-भवसागरमें धन्य है, उलटी यह द्विजनाव ।
नीचे रहि तरि जात सब, ऊपर रहि बुडिजाव ॥ १३ ॥

भा०-यह ब्राह्मणरूप नाव धन्यहै, संसाररूप समुद्रमें इसकी उलटीही रीति है उसके नीचे रहनेवाले सब तरते हैं और ऊपर रहने वाले नीच गिरते हैं अर्थात् ब्राह्मणसे जो नम्र रहता है वह तर-जाता है और जो नम्र नहीं रहताहै वह नरकमें गिरताहै ॥ १३ ॥

अयममृतनिधानंनायकोऽप्यौषधीनाममृतमय
शरीरःकांतियुक्तोऽपिचन्द्रः ॥ भवतिविगतर
श्मिमंडलंप्राप्यभानोःपरसदननिविष्टःकोलघुत्वं
नयाति ॥ १४ ॥

दोहा—सुधाधाम औषधिपति, छबियुत अमियशरीर ॥
तऊचंद रवि ढिग मलिन, परघर कौन गँभीर ॥१४॥

भा०—अमृतका घर औषधियोंका अधिपति जिसका शरीर अमृत-मय और शोभायुतभी चंद्रमा सूर्यके मंडलमें जाकर निस्तेज होता है दूसरेके घरमें बैठकर कौन लघुता नहीं पाता? ॥ १४ ॥

अलिरयंनलिनीदलमध्यगःकमलिनीमकरंदम-
दालसः ॥ विधिवशात्परदेशमुपागतःकुटजपुष्प
रसंबहुमन्यते ॥ १५ ॥

दोहा—यहअलिनलिनीपातमधि, तेहिरसमदअलसान ।
परि विदेश विधिवश कुरै, फूलरसै बहु मान ॥१५॥

भा०—यह भौंरा जब कमलिनीकेपत्तोंके मध्य था तब कमलिनीके फूलके रससे आलसी बना रहताथा, अब दैववशसे परदेशमें आकर कोरैयाके फूलको बहुत समझता है ॥ १५ ॥

पीतोगस्त्येनतातश्चरणतलहतो वल्लभोऽन्येनरोषा-
दाबाल्याद्विप्रवर्यैःस्ववदनविवरेधार्यतेवैरिणीमे ॥
गेहंमेछेदयन्तिप्रतिदिवसमुमाकांतपूजानिमित्तं
तस्मात्खिन्नासदाहंद्विजकुलसदनंनाथनित्यंत्य-
जामि ॥ १६ ॥

सवैया—क्रोधसे तात पियो चरणनसे स्वामि हतो जिनरो-
षते छाती । बालसे वृद्ध भये तक मुखमें भारति

वैरिणि धारे सँघाती ॥ मम जो वास पुष्प उन तोडत शिवजीकी पूजा होत प्रभाती । तासे दुख मान सदैव हरिमें ब्राह्मणकुलका त्यागचिताती १६

भा०—अगस्त्य ऋषिने रुष्ट होकर मेरे पिताको पी डाला और जिसमें क्रोधके मारे पाँवसे मेरे पतिको मारा, जो श्रेष्ठ ब्राह्मण बैठे सदा लडकपनसे लेकर मुखविवरमें मेरी वैरिणीको रखते हैं और प्रतिदिन पार्वतीके पतिकी पूजाके निमित्त मेरे गृहको काटते हैं हे नाथ! इससे खेद पाकर ब्राह्मणोंके घरको सदा छोडे रहती हूँ ॥ १६ ॥

बंधनानिखलुसंतिबहूनिप्रेमरज्जुकृतबंधनमन्यत् ॥ दारुभेदनिपुणोऽपिषडंघ्रिर्निष्क्रियोभवतिपंकज कोशे ॥ १७ ॥

दोहा—बंधन बहु तेरे अहैं, प्रेमबन्ध कछु और ॥
काठौ काटनमें निपुण, बँध्यो कमल महँ भौंर ॥ १७ ॥

भा०—बंधन तो बहुत हैं; परंतु प्रीतिकी रस्सीका बन्ध और-ही है. काठके छेदनेमें कुशलभी भौंरा कमलके कोशमें निर्व्यापार होजाता है ॥ १७ ॥

छिन्नोपिचंदनतरुर्नजहातिगंधं वृद्धोऽपिवारणपतिर्नजहातिलीलाम् ॥ यंत्रार्पितोमधुरतांनजहाति चेक्षुःक्षीणोपिनत्यजतिशीलगुणान्कुलीनः १८॥

दोहा—कट्यो न चन्दन महक तजु, बँध्यो न खेल गजेश ।
ऊख न पेरिउ मधुरता, शील न सुकुल कलेश ॥ १८ ॥

भा०—काटा चन्दनका वृक्ष गन्धको त्याग नहीं देता, बूढाभी गजपति विलासको नहीं छोडता, कोल्हूमें पेरीभी ऊँख मधुरता नहीं छोडती, वैसेही दरिद्रभी कुलीन सुशीलता आदिगुणोंका त्याग नहीं करता ॥ १८ ॥

उर्व्यांकोपिमहीधरोलघुतरोदोर्भ्यांधृतोलीलया
तेनत्वंदिविभूतलेचविदितोगोवर्द्धनोद्धारकः ॥
त्वांत्रैलोक्यधरंवहामिकुचयोरग्रेनतद्गण्यतेकिंवा
केशवभाषणेनबहुनापुण्यैर्यशोलभ्यते ॥ १९ ॥

सवैया-कोऊ भूमीके माहिं लघू पर्वत करधारके नाम तुम्हारो पर्यो है । भूतल स्वर्गके बीच सभीने जो गिरिवरधारि प्रसिद्ध कियो है ॥ तीनलोकके धारक तुमको धारों सदा कुच कौन गिनतहैं । तासे बहु कहनाहै जो वृथा यश लाभ हरे निज पुण्य मिलतहैं ॥ १९ ॥

भा०-पृथ्वीपर किसी अत्यन्त हलके पर्वतोंको अनायाससे बाहुओंके ऊपर धारण करनेसे आपस्वर्ग और पृथ्वीतलमें सर्वदा गोवर्द्धनधारी कहलाते हैं तीनों लोकोंके धरनेवाले आपको केवल कुचोंके अग्रभागमें धारण करती हूँ यह कुछभी नहीं गिना जाता है. हे केशव ! बहुत कहनेसे क्या ? पुण्योंसे यश मिलता है ॥ १९ ॥

इति श्रीवृद्धचाणक्ये पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः १६.

नध्यातंपदमीश्वरस्यविधिवत्संसारविच्छित्तये
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपिनोपार्जितः ॥
नारीपीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेपिनालिंगितं
मातुःकेवलमेवयौवनवनच्छेदेकुठारावयम् ॥ १ ॥

कवित्त-कीन नाहिं ध्यान हरिपदको जो मुक्ति पददाता शास्त्र बीचमें कह्योहै । स्वर्गकेभी द्वारको खोलतहै बलसे उस धर्मकाभी संचय नहीं कियोहै॥नारिनके

पुष्ट कुच स्वप्नमें न देखे ऐसो खोटो जन्म हमहीको आय मिल्यो है । माताके यौवन छेदन कुठारभये यही म्हारो नाम जगमाहिं तुल्यो है ॥ १ ॥

भा०—संसारसे मुक्त होनेके लिये विधिसे ईश्वरके पदका ध्यान मुझसे न हुआ, स्वर्गद्वारके कपाटके तोडनेमें समर्थ धर्मकाभी अर्जन न किया और स्त्रीके दोनों पीनस्तन और जंघाओंका आलिंगन स्वप्नमेंभी न किया, मैं माताके युवापनरूप वृक्षके केवल काटनेमें कुल्हाडी हुआ ॥ १ ॥

जल्पंतिसार्द्धमन्येनपश्यंत्यन्यंसविभ्रमाः ॥
हृदयेचिंतयंत्यन्यंनस्त्रीणामेकतोरतिः ॥ २ ॥

दोहा–बोलेहैं कोई औरसे, चितवतहैं कहिं और ।
मनमें चिंता अन्यकी, न स्त्री रति इकठौर ॥ २ ॥

भा०—भाषण दूसरेकेसाथ करती हैं, दूसरेको विलाससे देखती हैं व हृदयमें दूसरेहीकी चिन्ता करती हैं, स्त्रियोंकी प्रीति एकमें नहीं रहती॥२॥

योमोहान्मन्यतेमूढोरक्तेयंमयिकामिनी ॥
सतस्यावशगोभूत्वानृत्येत्क्रीडाशकुंतवत् ॥ ३ ॥

दोहा–जो मूरख ऐसे गिनत, कामिनिका मोहिं ध्यान ।
नाचै उसके वश पऱ्यो, क्रीडापक्षि समान ॥ ३ ॥

भा०—जो मूर्ख अविवेकसे समझता है कि, यह कामिनी मेरे ऊपर प्रेम करती है वह उसके वश होकर खेलके पक्षीके समान नाचा करता है ॥ ३ ॥

कोऽर्थान्प्राप्यनगर्वितोविषयिणःकस्यापदोऽस्तं
गताःस्त्रीभिःकस्यनखंडितंभुविमनःकोनामराज

प्रियः ॥ कःकालस्यनगोचरत्वमगमत्कोऽर्थीगतो
गौरवं कोवादुर्जनदुर्गुणेषुपतितःक्षेमेणयातःपथि४॥

सवैया–धनसे किसको नहिं गर्व भयो किस कामिक
दुःख समूह नशा। किसकें मन खंडित नाहिं
किये जगकामिनि राजहिं प्यार कसा ॥ को
कालके गालमें नाहिं पऱ्यो कोउ याचक
गौरव मान लसा। दुर्जन उनके वशमें पडके
सुखमारग माहिं जा कौन धसा ॥ ४ ॥

भा०–धन पाकर गर्वी कौन न हुवा, किस विषयीकी विपत्ति नष्ट हुई, पृथ्वीमें किसके मनको स्त्रियोंने खण्डित न किया, राजाको प्रिय कौन हुआ, कालके वश कौन नहीं हुआ, किस याचकने गुरुता पाई. दुष्टकी दुष्टतामें पडकर संसारके पंथमें कुशलतासे कौन गया ? ॥ ४ ॥

ननिर्मिताकेननदृष्टपूर्वानश्रूयतेहेममयीकुरंगी।
तथापितृष्णारघुनंदनस्यविनाशकालेविपरीतबुद्धिः५

दोहा–रचो न देख्यो नाहिं यहि, सुन्यो कनक मृग गात।
तऊ राम तृष्णा स्वमति, नाश काल फिरि जात ॥५॥

भा०–सोनेकी मृगी न पहिले किसीने रची, न देखी और न किसीको सुन पडती है, तौभी रघुनंदकी तृष्णा उसपर हुई, विनाशके समय बुद्धि विपरीत होजाती है ॥ ५ ॥

गुणैरुत्तमतांयांतिनोच्चैरासनसंस्थिताः ॥
प्रासादशिखरस्थोऽपिकाकःकिंगरुडायते ॥ ६ ॥

सोरठा–गुणसे पाय बडाय, नहिं ऊँचे बैठक टँगे ॥
बैठि ऊँचघर जाय, कहा काग होवै गरुड ॥ ६ ॥

भा०–प्राणी गुणोंसे उत्तमता है, ऊँचे आसनपर बैठकर नहीं कोठेके ऊपरके भागमें बैठा कौवा क्या गरुड होजाता है ? ॥ ६ ॥

गुणाःसर्वत्रपूज्यंतेनमहत्योऽपिसंपदः ॥
पूर्णेन्दुःकिंतथावंद्योनिष्कलंकोयथाकृशः ॥ ७ ॥

सोरठा—सब थल गुणहि पुजाय, नहीं महा तिहुँ संपदा।
बंदि कि तस विधु जाय, पूर क्षीण अकलंक जस ॥ ७ ॥

भा०—सब स्थानोंमें गुण पूजे जाते हैं, बड़ी संपत्ति नहीं; पूर्णिमाका पूर्णभी चंद्रमा क्या वैसा वंदित होता है, जैसा विना कलंकके द्वितीयाका दुर्बल ॥ ७ ॥

परस्तुतगुणौयस्तुनिर्गुणोपिगुणीभवेत् ॥
इंद्रोऽपिलघुतांयातिस्वयंप्रख्यापितैर्गुणैः ॥ ८ ॥

दोहा—औरनके वर्णन किये, बिन गुणहू गुणवान।
इन्द्रौ लघुताई लहै, निज मुख किये बखान ॥८॥

भा०—जिसके गुणोंको दूसरे लोग वर्णन करते हैं वह निर्गुणभी हो तो गुणवान् कहा जाता है, इन्द्रभी यदि अपने गुणोंकी आप प्रशंसा करे तो उनसे लघुता पाता है ॥ ८ ॥

विवेकिनमनुप्राप्तागुणायांतिमनोज्ञताम् ॥
सुतरांरत्नमाभातिचामीकरनियोजितम् ॥ ९ ॥

दोहा—पहुँचि विवेकी पुरुष पहँ, अति शोभा गुण पाव ॥
घनी रत्नछबि तबकढै, जब लहि कनक जडाव॥९॥

भा०—विवेकीको पाकर गुण सुन्दरता पाते हैं, जब रत्न सोनामें जडा जांता है तब अत्यन्त सुन्दर देख पडता है ॥ ९ ॥

गुणैः सर्वज्ञतुल्योऽपिसीदत्येकोनिराश्रयः ॥
अनर्घ्यमपिमाणिक्यंहेमाश्रयमपेक्षते ॥ १० ॥

दोहा—गुणसे विष्णु समानहूं, बिनु अवलंबहिनाहिं।
होय अमोलौ मणि तऊ, कनक अलंबाहिचाहि॥१०॥

भा०–गुणोंसे ईश्वरके सदृशभी निरालंब अकेलापुरुष दुःख पाताहै अमोलभी माणिक्य सोनाके अवलंबकी अर्थात् उसमें जडे जानेकी अपेक्षा करताहै ॥ १० ॥

अतिक्लेशेनयेअर्थाधर्मस्यापिक्रमेणतु ॥
शत्रूणांप्रणिपातेनतेअर्थामाभवंतुमे ॥ ११ ॥

दोहा–अति कलेशकरि धर्मतजि, अथवा परि अरि पाव॥
जो मिलती संपत्तिसो, मेरे पास न आव ॥ ११ ॥

भा०–अत्यन्त पीड़ासे, धर्मके त्यागसे और वैरियोंकी प्रणतिसे जो धन होतेहैं सो मुझको नहीं ॥ ११ ॥

किंतयाक्रियतेलक्ष्म्यायावधूरिवकेवला ॥
यातुवेश्येवसामान्यापथिकैरपिपूज्यते ॥ १२ ॥

दोहा–जो सुतियासम एकरति, तेहि संपति करु काह ॥
जो वेश्यासम होय तेहि, भोगहि चलतौ राह॥१२॥

भा०–उस संपत्तिसे लोग क्या करसकते हैं जो वधूके समान असाधारण हैं, जो वेश्याके समान सर्व साधारण हो वह पथिकोंकेभी भोगमें आसक्ती है ॥ १२ ॥

धनेषुजीवितव्येचस्त्रीषुचाहारकर्मसु ॥
अतृप्ताःप्राणिनःसर्वेयातायास्यंतियांतिच ॥ १३ ॥

दोहा–तिय जीवन धन अशनते, बिनाहि अघाने भोग ॥
गए जाइ हैं जात हैं, सबही प्राणी लोग ॥ १३ ॥

भा०–धनमें जीवनमें स्त्रियोंमें और भोजनमें अतृप्त होकर सब प्राणी गये जाते हैं और जायँगे ॥ १३ ॥

क्षीयन्तेसर्वदानानियज्ञहोमबलिक्रियाः ॥
नक्षीयतेपात्रदानमभयंसर्वदेहिनाम् ॥ १४ ॥

दोहा-क्षीण होहिं सब दान औ, यज्ञ होम बलि कीन ॥
पात्रदान सबको अभय, होय कबहुँ नहिं छीन ॥ १४ ॥

भा०–सब दान, यज्ञ, होम, बलि ये सब नष्ट होजातेहैं, सत्पात्र को दान और सब जीवोंको अभयदान ये क्षीण नहीं होते ॥ १४ ॥

तृणंलघुतृणात्तूलंतूलादपिचयाचकः ॥
वायुनाकिंननीतोऽसौमामयंयाचयिष्यति ॥ १५ ॥

दोहा-तृण लघु तेहिते रुई लघु, तेहिते याचक लोग ॥
पवन उडावै नाहिं कस, डरेउ याचना योग ॥ १५ ॥

भा०–तृण सबसे लघु होताहै. तृणसे रुई हलकी होती है, रुईसेभी याचक, इसे वायु क्यों नहीं उडालेजाता ? वह समझता है कि, यह मुझसेभी माँगेगा ॥ १५ ॥

वरंप्राणपरित्यागोमानभंगेनजीवनात् ॥
प्राणत्यागेक्षणंदुःखंमानभंगेदिनेदिने ॥ १६ ॥

दोहा-मानभंग सहि जिवनसो, भलो प्राणकर त्यागु ॥
प्राणत्याग क्षण एक दुख, मानभंग नितलागु ॥ १६ ॥

भा०–मानभंगपूर्वक जीनेसे प्राणका त्याग श्रेष्ठ है प्राणत्यागके समय क्षणभर दुःख होता है, मानके नाश होनेपर दिन दिन ॥ १६ ॥

प्रियवाक्यप्रदानेनसर्वेतुष्यंतिजन्तवः ॥
तस्मात्तदेववक्तव्यंवचनेकिंदरिद्रता ॥ १७ ॥

सोरठा-सबै अनंदित होय, मधुर वचनको पाइके ।
तेहिते बोलिय सोय, वचनहु कहा दरिद्रता ॥ १७ ॥

भा०–मधुर वचनके बोलनेसे सब जीव संतुष्ट होते हैं इसकारण इसीका बोलना योग्य है, वचनमें दरिद्रता क्या ? ॥ १७ ॥

संसारकटुवृक्षस्यद्वेफलेअमृतोपमे ॥
सुभाषितंचसुस्वादंसंगतिःसुजनेजने ॥ १८ ॥

दोहा–जगत कंटतरु फल दोई, अहै अमृत सम तूल ।
सरस वचन प्रिय औ सुजन, संगतिहूं अनुकूल॥१८॥

भा०–संसाररूप कटुवृक्षके दोही फल हैं, रसीला प्रियवचन और सज्जनके साथ संगति ॥ १८ ॥

बहुजन्मसुचाभ्यस्तंदानमध्ययनंतपः ॥
तेनैवाभ्यासयोगेनदेहमभ्यस्यतेपुनः ॥ १९ ॥

दोहा–दान पठन तप माहिं जो, जन्म जन्म अभ्यास ।
ताहीके संयोगते, फिरि फिरि देह प्रकाश ॥१९॥

भा०–जो जन्म जन्म दान, पठन, तप, इसका अभ्यास कियाजाता है उस अभ्यासके योगसे देहका अभ्यास फिर फिर करता है॥

पुस्तकेषुचयाविद्यापरहस्तेषुयद्धनम् ॥
उत्पन्नेषुचकार्येषुनसाविद्यानतद्धनम् ॥ २० ॥

दोहा–विद्या पुस्तक जो रही, जो धन पर कर माहिं ।
काम परे विद्या न वह, अहै धनहु वह नाहिं ॥ २० ॥

भा०–जो विद्या पुस्तकोंहीमें रहती है और दूसरोंके हाथोंमें जो धन रहता है, काम पडजानेपर न विद्या है न वह धन है ॥ २० ॥

इति वृद्धचाणक्ये षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

पुस्तकप्रत्ययाधीतंनाधीतंगुरुसन्निधौ ॥
सभामध्येनशोभेतजारगर्भाइवस्त्रियः ॥ १ ॥

दोहा-प्रति प्रतीतिविनु गुरु पढ्यो,सोह न सभा सिधारि।
ज्यों परपुरुष संगकृत, गर्भधारि करि नारि ॥ १ ॥
भा०-जिनने केवल पुस्तकके प्रतीतिसे पढ़ा गुरुके निकट न पढ़ावे सभाके बीच व्यभिचारसे गर्भवाली स्त्रियोंके समान नहीं शोभते ॥१॥

कृतेप्रतिकृतिंकुर्याद्धिंसनेप्रतिहिंसनम् ॥
तत्रदोषोनपततिदुष्टे दुष्टंसमाचरेत् ॥ २ ॥

तो० छं०-उपकार करै उपकार करै, अरु मारन पै तेहि
मारि लरै ॥ खलताइ करै खलताइ करै, तहँ दोष
नहीं मनमाहिं धरै ॥ २ ॥
भा०-उपकार करनेपर प्रत्युपकार करना चाहिये और मारनेपर मारना इसमें अपराध नहीं होता इसकारण कि, दुष्टता करनेपर दुष्टताका आचरण करना उचित होताहै ॥ २ ॥

यद्दूरंयद्दुराराध्यंयच्चदूरेव्यवस्थितम् ॥
तत्सर्वंतपसासाध्यंतपोहिदुरतिक्रमम् ॥ ३ ॥

दोहा-दूर होउ वा दूर बसु, दुराराधहू जोउ ।
सो सब तपसे साधिहै, तप बल सम नहिं कोउ ॥ ३ ॥
भा०-जो दूर है, जिसकी आराधना नहीं होसकती और जो दूर वर्त्तमान है वे सब तपसे सिद्ध होसके हैं, इसकारण सबसे प्रबल तप है ॥ ३ ॥

लोभश्चेदगुणेनकिंपिशुनतायद्यस्तिकिंपातकैः
सत्यंचेत्तपसाचकिंशुचिमनोयद्यस्तितीर्थेनकिम् ।
सौजन्यंयदिकिंगुणैःसुमहिमायद्यस्तिकिंमंडनैः
सद्विद्यायदिकिंधनैरपयशोयद्यस्तिकिंमृत्युना ॥४॥

सवैया-लोभ तबै कस अवगुण आन दुजो कस पाप
सबैलु तराई । सत्य रहै तपते तपका मन शुद्ध

वृथा तब तीरथ जाई ॥ शीलहई फिरि का गुण और कहाति न भूषण जो महिताई ॥ वेद भयो धनते तब का मृतु कौन जबै अपकीराति छाई ॥ ४ ॥

भा०—यदि लोभ है तो दूसरे दोषसे क्या, यदि चुगली है तौ और पापोंसे क्या, यदि सत्यता है तौ तपसे क्या, यदि मन स्वच्छ है तो तीर्थसे क्या, यदि सज्जनता है तो दूसरे गुणोंसे क्या, यदि महिमा है तो भूषणोंसे क्या. यदि अच्छी विद्या है तो धनसे क्या और यदि अपयश है तो मृत्युसे क्या ॥ ४ ॥

पितारत्नाकरोयस्यलक्ष्मीर्यस्यसहोदरी ॥
शंखोभिक्षाटनंकुर्यान्नादत्तमुपतिष्ठते ॥ ५ ॥

दोहा—पितु रत्नाकर लक्ष्मी, सगी बहिन श्रुति गाव ।
शंख भीख माँगे तनू, धन विनु दिये न पाव ॥५॥

भा०—जिसका पिता रत्नोंकी खानि समुद्र है, लक्ष्मी जिसकी बहिन, ऐसा शंख भीख माँगता है विना दिया नहीं मिलता ॥ ५ ॥

अशक्तस्तुभवेत्साधुर्ब्रह्मचारीचनिर्धनः ॥
व्याधिष्ठोदेवभक्तश्चवृद्धानारीपतिव्रता॥ ६ ॥

दोहा—शक्तिहीन साधू बने, ब्रह्मचारि धनहीन ।
रोगी सुर प्रेमी तिया, वृद्ध पतिव्रत कीन ॥ ६ ॥

भा०—शक्तिहीन साधु होता है, निर्धन ब्रह्मचारी, रोगग्रस्त देवताका भक्त होता है और वृद्ध स्त्री पतिव्रता होती है ॥ ६ ॥

नान्नोदकसमंदानंनतिथिर्द्वादशीसमा ॥
नगायत्र्याःपरोमंत्रोनमातुर्दैवतंपरम् ॥ ७ ॥

सोरठा—अन्न वारि सम दान, नहीं द्वादशी सरिस तिथि ।
गायत्री बढि आन, मंत्र मातु बढ़ि सुर नहीं ॥७॥

भा०–अन्न जलके समान कोई दान नहीं है, न द्वादशीके समान तिथि, गायत्रीसे बढकर कोई मंत्र नहीं है, न मातासे बढकर कोई देवता ॥ ७ ॥

तक्षकस्यविषंदंतेमक्षिकायाविषंशिरः ॥
वृश्चिकस्यविषंपुच्छेसर्वांगेदुर्जनोविषम् ॥ ८ ॥

दोहा–विष तक्षकके दंतमों, माँखिनके शिरसंग ।
बीछिनके पूछन बसै, दुष्टनके सब अंग ॥ ८ ॥

भा०–सांपके दांतमें विष रहता है, मक्खीके शिरमें विष है, विच्छूकी पूंछमें विष है, सब अंगोंमें दुर्जन विषहीसे भरा रहताहै ॥८॥

पत्युराज्ञांविनानारीउपोष्यव्रतचारिणी ॥
आयुराहरतेभर्तुःसानारीनरकंव्रजेत् ॥ ९ ॥

बरवै–बिनुपति आयसु बरत करत जो नारि ।
हरत आयु पियकी अरु नरक सिधारि ॥ ९ ॥

भा०–पतिकी आज्ञा विना उपवास व्रत करनेवाली स्त्री स्वामिकी आयु हरती है और वह स्त्री आप नरकमें जाती है ॥ ९ ॥

नदानैःशुध्यतेनारीउपवासशतैरपि ।
नतीर्थसेवयातद्वद्भर्तुः पादोदकैर्यथा ॥ १० ॥

न० छं०–न शुद्ध तीर्थ जानते, न सौ उपाय दान ते ॥
यथा सुतीय पीयके, पखारि पाँय पीयके ॥१०॥

भा०–न दानोंसे, न सैकडों उपवासोंसे, न तीर्थके सेवनसे, स्त्रीवैसी शुद्ध होती है, जैसी स्वामिके चरणोदकसे ॥ १० ॥

पाद्यशेषंपीतशेषंसंध्याशेषंतथैवच ॥
श्वानमूत्रसमंतोयंपीत्वाचांद्रायणंचरेत् ॥ ११ ॥

दोहा–चरणोंके धोते बचो, पीने संध्याशेष ।
श्वान मूत्र सम जासु पी, चांद्रायण निर्देष ॥ ११ ॥

भा०—पाँव धोनेसे जो जल शेष रहजाताहै, पीनेसे जो बचजाताहै, और सन्ध्या करनेपर जो अवशिष्ट जल है वह कुतेके मूत्रके समानहै उसको पीकर चांद्रायणका व्रत करना चाहिये ॥ ११ ॥

दानेनपाणिर्नतुकंकणेनस्नानेनशुद्धिर्नतुचंदनेन ॥
मानेनतृप्तिर्नतुभोजनेनज्ञानेनमुक्तिर्नतुमंडनेन १२

सवैया—करमें छबि दान दिये भरती नरतीभर कंकनके पहिरे। लहु शुद्ध शरीर नहान किये नहिं चंदन लेपहिते गहिरे। सन्मानते तृप्त जो होत नितै नबनै तस भोजनके बलते। नर ज्ञानहि युक्ति समुक्ति लहै न जटा अरु छापहिके बलते ॥ १२ ॥

भा०—दानसे हाथ शोभता है, कंकणसे नहीं, स्नानसे शरीर शुद्ध होताहै, चन्दनसे नहीं, सन्मानसे तृप्ति होतीहै भोजनसे नहीं, ज्ञानसे मुक्ति होतीहै, छापा तिलकादि भूषणसे नहीं ॥ १२ ॥

नापितस्यगृहेक्षौरंपाषाणेगंधलेपनम् ॥
आत्मरूपंजलेपश्यञ्छक्रस्यापिश्रियं हरेत् ॥ १३ ॥

सो०—क्षौर किये घर नाइ, जलमें देखे रूप निज ॥
घसि उपलै तेलाइ, चंदन इंद्रौ धन नशै ॥ १३ ॥

भा०—नाईके घरपर बाल बनवानेवाला, पत्थरसे लेकर चन्दनलेपन करनेवाला, अपने रूपको पानीमें देखनेवाला, इन्द्रभी हो तो उसकी लक्ष्मीको हरलेते हैं ॥ १३ ॥

सद्यः प्रज्ञाहरा तुंडी सद्यः प्रज्ञाकरी वचा ॥
सद्यः शक्तिहरा नारी सद्यः शक्तिकरं पयः ॥ १४ ॥

तो०छं—कुँदुरू वरबुद्धिहि कुंद करैं, वच सद्यहि तासु प्रकाश करै ॥ अबला बलबासहि आसु दरै, तेहि पूरण क्षीर तुरंत भरै ॥ १४ ॥

भा०-कुँदुरू शीघ्रही बुद्धि हरलेताहै और वच झटपट बुद्धि देती है स्त्री तुरंतही शक्ति हरलेतीहै, दूध शीघ्रही बल करदेताहै ॥ १४ ॥

यदिरामायदिचरमायदितनयोविनयगुणोपेतः ॥
तनयेतनयोत्पत्तिःसुरवरनगरेकिमाधिक्यम् ॥१५॥

दोहा-कामिनि लक्ष्मी विनययुत, सुतगुण भूषित भेष ॥
पौत्र सुधन जो होय तौं, स्वर्गहि कहा विशेष ॥१५॥

भा०-यदिकांताहै, यदि लक्ष्मी वर्तमानहै, यदि पुत्र सुशीलतागुणसे युक्तहै और पुत्रके पुत्रकी उत्पत्ति हुईहो फिर देवलोकमें इससे अधिक क्या है ॥ १५ ॥

परोपकरणंयेषांजागर्तिहृदयेसताम् ॥
नश्यंतिविपदस्तेषांसंपदःस्युःपदेपदे ॥ १६ ॥

दोहा-जिन सज्जन मन माहिं नित, जागत पर उपकार।
वेगि तासु नशु विपति अति, पगपग मिलु धन भार १६

भा०-जिन सज्जनोंके हृदयमें परोपकार जागता रहता है उनकी विपत्ति नष्ट होजाती है और पद पदमें सम्पत्ति होती है ॥ १६ ॥

आहारनिद्राभयमैथुनानिसमानि चैतानि नृणां पशूनाम् ॥ ज्ञानंनराणामधिकोविशेषो ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः ॥ १७ ॥

दोहा-निद्रा भोजन भोग ये, मनुज सरिस पशुमाहिं ।
मतिहि नरनके बाढि है, तेहि विनु पशुसम आहिं॥१७॥

भा०-भोजन, निद्रा, भय, मैथुन ये मनुष्य और पशुओंके समान ही, मनुष्योंको केवल ज्ञान अधिक विशेष है, ज्ञानसे रहित नर पशुके समान हैं ॥ १७ ॥

दानार्थिनोमधुकरायदिकर्णतालैर्दूरीकृताःकरि-
वरेणमदान्धबुद्ध्या ॥ तस्यैवगण्डयुगमण्डन-
हानिरेषाभृंगाःपुनर्विकचपद्मवनेवसंति ॥ १८ ॥

खा०छं०-ज्यौं मदान्ध गज कर्ण हिलाई, पिवते मधुक-
हँअलिन दुराई । गे कपोल दुहुँ भूषण ताही,
भँवर उडी कमलनपर जाही ॥ १८ ॥

भा०-यदि मदान्ध गजराजने मधुके अर्थी भौंरोंको मदांधतासे कर्णके तालोंसे दूर किया तौ यह उसीके दोनों गण्डस्थलकी शोभाकी हानि भई, भौंरे फिर विकसित कमलवनमें वसते हैं ॥ १८ ॥ तात्पर्य यह है कि, यदि किसी निर्गुण मदांध राजा वा धनीके निकट कोई गुणी जा पडे उस समय मदान्धोंको गुणीको आदर न करना मानो अपनी लक्ष्मीकी शोभाकी हानि करनी है. काल निरवधि है और पृथ्वी अनंत है गुणीका आदर कहीं न कहीं किसी न किसी समय होहीगा ॥ १८ ॥

राजावेश्यायमश्चाग्निस्तस्करोबालयाचकौ ॥
परदुःखंनजानंतिह्यष्टमोग्रामकंटकः ॥ १९ ॥

दोहा-राजा वेश्या अनल यम, बालक याचक चोर ।
ग्रामकंटकौ आठ यह, परदुख लखै न भोर ॥१९॥

भा०-राजा, वेश्या, यम, अग्नि, चोर, बालक, याचक और आठवाँ ग्रामकंटक अर्थात् ग्रामनिवासियोंको पीडा देकर अपना निर्वाह करने वाला ये दूसरेके दुःखको नहीं जानते ॥ १९ ॥

अधः पश्यसिकिंबालेपतितंतवकिंभुवि ॥
रेरेमूर्खनजानासिगतंतारुण्यमौक्तिकम् ॥ २० ॥

दोहा-का तिय तू नीचे लखति, गिरेउ कछू महि बीच॥
तरुणाई मोती गयो, तैं नहिं जानत नीच ॥२०॥

भा०–हे बाले ! तू नीचे क्यों देखती है पृथ्वीपर तेरा क्या गिरपडा ? तब स्त्रीने कहा रेरे मूर्ख ! नहीं जानता कि, मेरा तरुणतारूप मोती चलागया ॥ २० ॥

व्यालाश्रयापिविकलापिसकंटकापिवक्रापिपंकिलभवापिदुरासदापि ॥ गन्धेनबन्धुरसिकेतकिसर्वजंतोरेकोगुणःखलुनिहंतिसमस्तदोषान् २१

इति श्रीवृद्धचाणक्यदर्पणे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

सो०–वक्र दुर्लभ अहि बास, विफल पंकजनि कंटकी ।
सकल दोष किय नास, गंध गुणै ते केतक हित ॥ २१ ॥

भा०–हे केतकी ! यद्यपि तू सांपोंका घरहै, विफल है, तुझमें कांटेभी हैं, टेढी है, कीचडमें तेरी उत्पत्तिहै, और तू दुःखसे मिलतीभी है तथापि एक गंधके गुणसे सब प्राणियोंकी बन्धु होरही है. निश्चय है कि एकभी गुण दोषोंका नाश करदेता है ॥ २१ ॥

॥ इति चाणक्यनीतिदर्पणभाषाटीका समाप्ता ॥



"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
बंबई.

क्रय्यपुस्तकोंकी संक्षिप्त-सूची ।



नाम.	की. रु. आ.
राजनीति ।	
शुक्रनीति भाषाटीकासहित (राजप्रबन्ध व नीति)	१-८
भर्तृहरिशतक भाषाटीका (नीति, शृंगार, वैराग्य)... ...	१-०
चाणक्यनीति भाषाटीका दोहासहित जिल्द	०-८
पंचतंत्र मूल	१-८
पंचतंत्रभाषाटीका शिक्षा चातुर्यताकी सीढी	२-०
विदुरनीतिहिंदुस्थानी (श्रीमहाराज धृतराष्ट्रको विदुरने उपदेश दियाहै यक्षप्रश्नोंकेसह)	०-४
विदुरप्रजागरराजनीति मारवाडीभाषा	०-८
विदुरप्रजागर राजनीति छंदबद्ध कविता देखनेही योग्य है	०-४
राजनीति पंचोपाख्यान भाषा	०-७
कुण्डलिया गिरिधररायकृत (सामयिक नीति वेदान्त संयुक्त) अबकी बार दूनी होगई है	०-९
नीतिसंग्रह (सामयिक श्लोक पद्यटीकासमेत)	०-४
बेकनविचार रत्नावली--(नीति--शिक्षा)	०-८
भर्तृहरिकृत वैराग्यशतकम् (हरदयालकृत पद्यात्मक भाषया समेतम् सटिप्पणम्)	०-१०
नीतिमनोरमा सटीक (नीतिके श्लोकोंकी टीका कवित्तोंमें वर्णित है)	०-६
ठहरो-अर्थात् (उपदेशदर्पण) इसमें २०० शिक्षित चुटकुलेहैं.	०-४
हिंदुस्थानकादण्डसंग्रह (ताजीरातहिंद)	१-१२
अफजलुलकानून (राजपूतानेकी फौजदारीका कानून) ...	२-०

नाम.	की. रु. आ.
भाषा–काव्य ।	
रामरसायन रामायन–रसिकविहारीकृत	४–०
रसिकप्रिया सटीक	१–४
रामचंद्रिका सटीक कवि केशवदास प्रणीत	२–०
काव्यनिर्णयभाषा छन्दबद्ध [भिखारीदासकृत] मनहरण छन्दोंमें कठिन (अलंकार) वर्णन	१–०
जगद्विनोद [पद्माकरकृत नायकाभेद]	०–६
रसराज [मतिरामकृत नायकाभेद]	०–६
ब्रजविलास बड़ा मोटेअक्षरका टिप्पणीसहित	४–०
ब्रजविलास मध्यमअक्षर टिप्पणी सहित विलायती जिल्द ग्लेज	२–०
तथा रफ कागजका	१–८
ब्रजविलास छोटा अक्षर ग्लेज	१–०
" " रफ	०–१२
ब्रजचरित्र (श्रीराधाकृष्णजीकी सर्वलीला सुगम दोहा चौबोलोंमें वर्णित हैं)	३–०
प्रेमसागर बडा ग्लेज कागजका	१–८
प्रेमसागर बड़ा रफ	१–४
भक्तमाला रामरसिकावली बड़ी, रीवाँधिपति महाराज रघुराजसिंहकृत अत्युत्तम छन्दबद्ध जिसमें चारोंयुगोंके भक्तोंकी भिन्न २ कथा हैं और यह द्वितीयावृति उत्तर चरित्र समेत अत्युत्तम नई छपी है	४·०
रामस्वयंवर श्रीमहाराजारघुराजसिंहकृत (काव्यदेखनेयोग्य)	४–८
रुक्मिणीपरिणय–महाराज श्रीरघुराजसिंहजू देव प्रणीत ...	१–८
भक्तमाल नाभाजीकृत सटीक (छंदबद्ध)	१–४

Saran ke bakhalon.

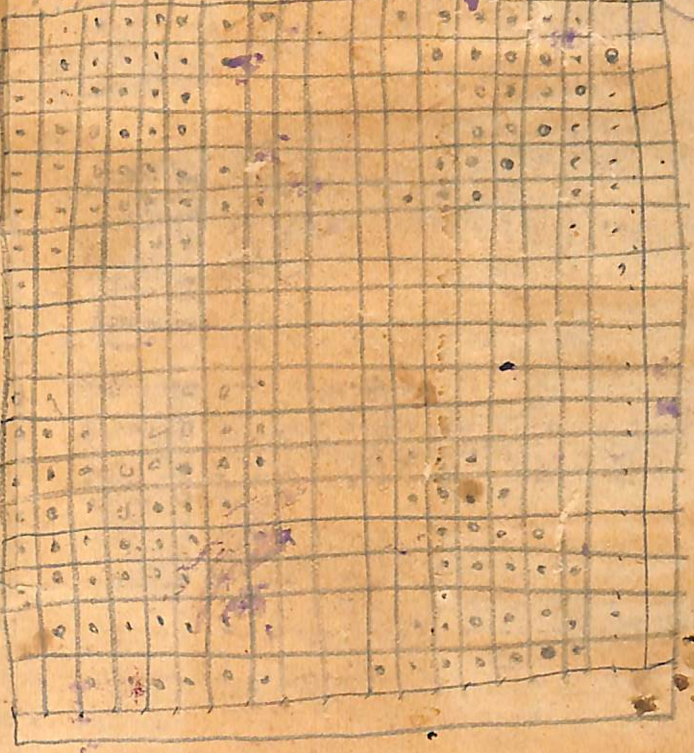
Milke bichudu
Nath jana Nithi
Naja ar tugatke
Kahdbji Note
Balam kahdbji
More Sagan Eak
2 or Ahed kahe

51

47

34

17



55
34
21

[illegible]

[illegible] 55 5 [illegible]

14

9 [illegible]

[illegible]

[illegible]